भूमिका ।

यह पुस्तक जो अब पाठकोंके हाथमें है प्रचलित धर्मोंके भेद और विरुद्धताके मूल कारणके सम्बंधमें वर्षोंकी लगातार धैर्ययुक्त छानबीनका फल है । इसको मैं सत्यताके जिज्ञासुओंके सन्मुख एक गुप्त भाषाके विज्ञापनसहित उपस्थित करता हूं जो एक ऐसी भारी दर्याफ्त है कि जिससे धार्मिक विश्वासका रंग परिवर्तित हो जावेगा और विचारोंकी कायापलट हो जावेगी । निःसंदेह कुछ मनुष्योंका ऐसा विचार चिरकालसे है कि धार्मिक पुस्तकोंमें केवल प्राकृतिक शक्तियों अर्थात् मेघ वर्षा वनस्पतिकी उपजना इत्यादिके काव्य अथवा रूपक अलंकार भरे हुये हैं परन्तु इस विचारसे जिज्ञासु विचारक बुद्धि संतुष्ट नहीं होती और इस पर साधारण रीतिसे सहमतता भी नहीं है जो इसके सत्य होनेकी दशामें होनी चाहिये थी । तथापि केवल इतनी विरुद्धता ही इस बातको विश्वसित कर देती है कि यह पुस्तकें इतिहास रूपमें पढ़े जानेके लिये नहीं लिखी जा सकती थीं और न लिखी गईं । जो नवीन दर्याफ्त अब हुई है वह इस बातको जाहर कर देगी कि वेद कुरान जेन्दावेस्ता और निस्संदेह सारे प्राचीन कथानाख्य, सब एक ही भाषामें लिखे हुये हैं और उस विरुद्धताके स्थानपर जो उनके ऊपरी लिपिके अक्षरोंकी भाषाओंमें पाई जाती है परस्पर एक दूसरेकी एकताको साबित करते हैं । हम इस गुप्त भाषाको विस्तृत

ख

कह सकते हैं ताकि इसको प्राकृत अथवा साधारण म
ष्योंकी भाषा और संस्कृत अथवा विद्वानोंकी भाषासे पृथ
किया जा सके। पिक्टोरियल का मुख्य भाव यह है कि यह उ
मोत्तम मानसी विचारको कविताके रूपमें प्रगट करती है औ
उसका गुण यह है कि उसमें समस्त दर्शनोंको एक ही चित्र
चित्रोंके चौखटेमें भर दिया जा सकता है। इस पुस्तकका मु
विषय मेरी पूर्व लिखित 'दि की आफ नालेज' में दिया गया था औ
एक संक्षिप्त भाग इसका मेरे प्रॉक्टिकल पाथके संकलन (Ap
endix) में दिया जा चुका है जो १९१७ में प्रकाशित हुई थी
यह वर्तमान पुस्तक जो व्याख्यानोंके रूपमें लिखी गई है सा
द्धान्तदर्शनके फलको एक संयुक्त और संक्षिप्त रूपमें दिखाती
और इस विचारसे छापी जाती है कि इससे कमसे कम विद्याम
द्धान्तदर्शनकी उन्नति होगी। यह बात मेरे लिये कुछ साधार
संतोषका कारण नहीं है कि मैं इसको ऐसे मूल्य पर अर्पण क
सकता हूं कि जो प्रत्येक मनुष्यकी शक्तिमें है। केवल इतना।
और कहना बाकी है कि इस पुस्तकके व्याख्यान सब एक दूस
से एक विशेष क्रममें उपयुक्त हैं और उनको उसी क्रमसे पढ़
चाहिये जिसमें वह दिये गये हैं।

[illegible] ११ मार्च [illegible]
[illegible]
(हिन्दी [illegible])

चम्पतराय जैन।

संक्षिप्त चिन्हों की व्याख्या।

(१) इ० रि० ए०—दि इनसाइक्लोपीडिया ओफ रिलीजन ऐंड ऐथिक्स।

(२) प० हि० भा०—दि परमेनेन्ट हिस्ट्री ओफ भारतवर्ष।

(३) से० बु० ई०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि ईस्ट।

(४) से० बु० हिं०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि हिंदूज।

(५) से० बु० जै०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि जैन्स।

(६) सि० सि० फि०—दि सिक्स सिस्टेम्स ओफ इंडियन फिलोसोफी (मैक्समूलर साहबकी)

विषय सूची ।

पहला व्याख्यान ।

दूसरा व्याख्यान ।

तृतीय व्याख्यान ।

(क)

तृतीय व्याख्यान ।

(ख)

चतुर्थ व्याख्यान ।

पंचम व्याख्यान ।

(क)

सप्तम व्याख्यान।

नवम व्याख्यान।

,,	११	,,	हद औसतको उसी समय " जामे "	हद औसत (Middleterm) को उसी समय "जामे" (सर्वदेशी)
५६	८	नीचे	कुदरती	कुदरती मन्तक
५७	११	,,	नतीजा	यह नतीजा
,,	,,	,,	एक अनुभव	एक प्रकारका ऐन्द्रिय ज्ञान
६१	१	,,	है जैसे	है कि जैसे
६२	६	,,	अभ्यासों	आभासों
६३	११	,,	सहधर्मी	सहधर्मी उदाहरण
,,	१	,,	दया	रचा
६४	६	ऊपर	नहीं	नहीं मानी
,,	२	नीचे	पर=	पर साध्य
६५	८	,,	अर्थ	(अर्थ)
,,	६	,,	का	को
६६	११	,,	इलकाते	इलक्वाते
६७	२	,,	यह; जो	यह जो
७४	४	ऊपर	में	के
८५	७	,,	पुनीवर्त्त	पुनीवर्त्त
८७	२	नीचे	भान	ज्ञानहीन
८८	६	ऊपर	कर्तव्य	उत्तेजना

२१२	८	ऊपर	खयाजत	खयालात
२१३	८	,,	वरी	दर्री
,,	३	नीचे	पमज	यामज
२१५	६	ऊपर	यरी	यरीयाद
२१७	७	ऊपर	धारण	शरीर धारण
२१९	,,	नीचे	मानने	जानते
२२०	४	,,	घातनी	घातिनी
२२१	६	ऊपर	इन्दत्र	इन्नरूप
२२३	११	,,	विद्या	अंजनविद्या
२२४	९	,,	परिचयपन	परिचयपत्र
२२५	१०	,,	फट्टे	फटे
,,	३	नीचे	अयश्य	अय हम
२२६	११	ऊपर	अनिज	अग्नि
२२९	३	नीचे	देइ	दण्ड
२३१	१०	नीचे	डिट	बड़े
२३१	२	नीचे	Vora-ha	Var-ha
२३२	७	ऊपर	प्रागपनसे	पुरं तोरसे
२३३	६	ऊपर	मार्गों	मर्गों
२३३	८	नीचे	कार्तों	अयमारों
२३४	६	नीचे	सज्ञा	शब्द
२३६	२	ऊपर	पुजर पार	मेकी व बडी
२३७	३	ऊपर	॥ द्वंप	= द्वंप
२३७	३	ऊपर	वधान	दधन
२४०	३	ऊपर	३१	३
२४१	१	ऊपर	उनकी	जानती
२४२	१	नीचे	[illegible]	आंचल
२४३	३	ऊपर	[illegible]	बरी

श्रीपरमात्मने नमः ।

असहमत संगम ।

अर्थात्

तुलनात्मक धर्मनिर्णय ।

प्रथम व्याख्यान ।

विषय-दर्शन ।

तुलनात्मक धर्मनिर्णय एक विज्ञान है। यह मानुषिक विद्या का वह अंग है कि जो भिन्न २ धर्मों। मतोंकी शिक्षाओंको एक दूसरेसे अनुकूल करनेके निमित्त उन मतोंके विचारोंका निश्चय करनेकी जिज्ञासा करता है। और सत्य पर पहुंचनेके लिए सनातन विद्याका नियमानुकूल प्रकाशित करता है और उसका अग्र बतलाता है। उसका प्रादुर्भाव आलोचनाकी उस

अनभिज्ञ अथवा अर्धअभिज्ञ विद्वानोंने पुरुषार्थके जोशमें और मानुषिक प्रेमसे प्रेरित हो इन विभिन्न धर्मोंमेंसे कुछको खींचतान कर एक समान प्रकट करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु हर प्रकारके विश्वासोंको शामिल करते हुए, अर्थात् पूर्ण रूपमें इस विषयपर कभी भी विचार नहीं किया गया है और न मानुषिक विचारावतरणके इतिहासमें कभी इससे पहिले विभिन्न धर्मोंके आपसी झगड़ोंके मूल कारणोंको जाननेका प्रयत्न ही किया गया है।

तुलनात्मक विधिके सम्बन्धमें भी हमारे पूर्वजोंको यह नियम पसन्द आया है कि विभिन्न धर्मोंके विरोधात्मक तत्त्वोंमेंसे कुछको जिन पर वे सहमत हैं छांटलें और उन पर ज़ोर दें। और शेष उन सब तत्त्वोंको, जो विभिन्न धर्मोंमें विरोधात्मक पाए जाते हैं, दबा दें। परन्तु यह नियम हमें पसन्द नहीं है। कारण कि कहीं विरोध इसप्रकार दबानेसे दब सकता है? और न कभी स्थायी ऐक्य—समानता ही संभव है जबतक कि विरोधात्मक तत्त्व हल न हो जांय। अतः वास्तविक [illegible] दर्शनके लिए यह आवश्यक है कि हम इन विरोधात्मक [illegible] [illegible] उनके आन्तरिक [illegible] [illegible] [illegible]

होगा जिसके द्वारा हम इन विरोधोंको उत्पन्न होता देख सकें। इस प्रकार हम एक सत्यके मंदिरका निर्माण करेंगे जो सब जातियों और मनुष्योंके लिए वास्तविक पूजनीय और एकताका पूजास्थान भी होगा और जहां पर विरोधोंको दबाया नहीं जायगा परन्तु वे सत्यता और यथार्थताके वास्तविक तत्वोंको साफ और निश्चित करानेके कारण बन जांयगे और जहां पर उनका तुहराना मनुष्योंमें हार्दिक प्रेम और मित्रताको और भी ज्यादा पुष्ट करेगा।

प्राचीन शास्त्रमें छिपी हुई मिलती हैं और सरलतासे बनाई भी जा सकी है। गुप्त शिक्षाओं और समस्याओंका बड़ा एवं विचित्र समूह इस प्रकार पेसे कुछ नियमों पर निश्चित हो जाता है जिनसे कि हम विश्वस्त रूपसे प्राचीन धर्मोंके वास्तविक तत्त्वोंका, जो शताब्दियोंकी धूलके नीचे दबे पड़े हुए हैं, फिरसे निर्माण कर सके हैं। इस ढंग पर जो नतीजे हम निकालेंगे उनकी सत्यताका, बल्कि कहना तो यूं चाहिए कि उनकी यथार्थ सत्यताका, पूरा विश्वास विभिन्न मतोंके एक स्थान पर मिलनेसे हो जाता है। अर्थात् जब कि विज्ञान (Science) सिद्धांत, पुराण, शास्त्र आदिका मिलान एक बातपर हो जावे तो फिर उसकी सत्यता और पूर्णतामें कोई संशय नहीं रह सका है। अस्तु। हम केवल तुलनात्मक-धर्म विज्ञानके प्रारंभिक तत्त्वोंका ही वर्णन नहीं करते रहेंगे बल्कि एक यथार्थ सत्य व एकताके मंदिरका भी निर्माण करेंगे जो हर जमाने और हर समय केलिए वास्तविक मीरास (पैतृक सम्पत्ति) मनुष्य जातिका होगा और यह एक उच्च एवं विशाल [illegible] पवित्र [illegible] होगा जो हर प्रकार पूर्ण एवं [illegible] पूर्ण और स्वावलम्बित होगा। यद्यपि इसने [illegible]

हमारा बनाई हुई [illegible]

उठाए जायें, गुन्जाइश रहेगी। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रयत्नोंका फल जो आपके सामने आएगा वह पूरे तौरसे हमारे ढंग और नियमकी सफलता और मान्यताका काफी प्रमाण होगा।

धर्म-चिंतन (ऐक्य) के विषयमें आपको और मुझको जो इस न्यायके मंदिरमें विद्यमान हैं इसबात पर सहमत होना चाहिए कि विभिन्न समस्याओंको हल करनेमें, जो इस सम्बन्धी सामने आयें, ठीकठीक न्यायकी कसौटी ही हमारी पथप्रदर्शक होनी चाहिये। पक्षपात और द्वेष सत्यताके विपरीत हैं। और उनका उत्पात बुद्धिका संहारक है। मनुष्योंके निजी अन्ध विश्वास और अनिश्चित बात भी हमको सहायता नहीं दे सकते हैं। इनसे भी बुद्धिको शान्ति नहीं होती है। और इस कारण सत्यकी खोजमें यह बाधक हैं। जैसा कि एक और स्थान पर पहले कहा गया है। यदि वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके बजाय मनुष्योंके निजी विश्वासोंपर भरोसा किया जाय तो प्रत्येक पागल मनुष्य [illegible] और [illegible] मनुष्य [illegible] कसौटी-[illegible] [illegible] इस [illegible]

ही पथप्रदर्शक बुद्धि हमारे पगोंको सत्य मार्ग पर चलानेके लिए अचल प्रकाशका काम दे। इसी कारणवश प्रारंभमें हमें धर्मशास्त्रोंके तत्त्वोंको भी छोड़ना होगा। क्योंकि करीब २ सर्व धर्मोंके शास्त्र केवल ऐसी बातोंसे भरे हुए नहीं हैं जो कि पूर्णरूपेण अविश्वास योग्य ही हों और जिन को कि केवल स्वधर्म होनेके हेतु विश्वास करनेवाला ही ग्रहण कर सकता है। सुतरां एक धर्मशास्त्र दूसरे धर्मशास्त्रसे और कुछ स्थानोंपर स्वतः अपने पूर्वकथित सिद्धान्तोंसे विपरीत कथन करते हैं और यहां तक कि उन्हें सरल एवं शुद्ध सत्य मानना नितान्त असंभव प्रतीत होता है।

बुद्धिगवेषणा अथवा मानसिक खोज किसको कहते हैं? और बुद्धिको उत्तमता एवं विशालता क्योंकर इन्हींसे प्राप्त की जा सकती है? ये बातें दूसरे व्याख्यानमें बतलाई जांयगी। परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि जो मनुष्य अपने धार्मिक मिथ्या मूलों ([illegible]) को जड़ उखाड़ कर नहीं फेंक देता है वह सत्य की खोज करने योग्य नहीं कहा जा सकता है। यदि कोई सज्जन [illegible] कि जो अपने [illegible] विचारोंको प्रगट नहीं कर सकता है [illegible] करनी चाहिये [illegible]

पुद्गलके आपसी मिलावके फलस्वरूप है जो मुख्य २ प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है। संसारी आत्माएं पुद्गलसे सम्बन्धित हैं, जिसके कारण उनके वास्तविक गुण विभिन्न परिमाणमें दक गये हैं एवं निस्तेज हो गए हैं। स्वाभाविक गुणोंका इस प्रकार दब जाना और मन्द पड़ जाना उस पुद्गलकी तौल और परिमाणपर निर्भर है जो प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है। पुद्गलसे पूर्ण छुटकारा पा लेनेका नाम मोक्ष है। जिसके प्राप्त होने पर जीवके स्वाभाविक गुण जो मन्द और निस्तेज हो गए थे फिर नये सिरे-से पूर्णरूपेण प्रकाशमान (उदित) हो जाते हैं। शुद्ध जीवके स्वाभाविक गुणोंमें

(१) सर्वज्ञता

(२) आनन्द और

(३) अमरत्व

शामिल हैं इसी कारण प्रत्येक मुक्त जीव सर्वज्ञ आनन्दसे भरपूर और अमर हो जाता है क्योंकि इस समय उसके साथ पु-द्गल नहीं रहता है। इस प्रकार प्रत्येक मुक्त जीव [illegible] [illegible] निरन्तर रहते हैं [illegible]

नहीं पड़ते हैं। शेषके अनंत जीव आवागमनके चक्रमें पड़े चक्र
खाया करते हैं। बारम्बार जन्मते और मरते हैं। आवागमनमें चार
गतियां हैं। जिनके नाम (१) देव गति (२) नरक गति (३)
मनुष्य गति (४) और तिर्यंच गति है। देवगति स्वर्गवासी दे-
वादिसे संबंध रखती है। नरकगतिका मतलब नारकी जीवोंसे है।
मनुष्यगतिका भाव मनुष्य जीवनसे है। शेषके सब प्रकारके जीव
तिर्यञ्चगतिमें दाखिल हैं जैसे नभचर, थलचर, कीड़े, मकोड़े
वनस्पति आदि। इन गतियोंमेंसे प्रत्येकमें विभिन्न अवस्थायें
जीवनकी हैं परन्तु गति चार ही हैं। स्वर्गवासी देवगण विशेष
सुख और आनन्दका उपभोग करते हैं। किन्तु दुःखका वहां भी
बिलकुल अभाव नहीं है। नारकी जीव अत्यन्त दुःख उठाते हैं।
मनुष्य दुःख और सुख दोनों भोगता है किन्तु उसके भागमें
दुःखका परिमाण विशेष है। और तिर्यञ्च गतिमें भी दुःख
और संकट विशेष है। बार २ जन्मना और मरना इन
चारों गतियोंमें है।। केवल वे ही जीव, जो आवागमनके
संसारसे बाहर हो जाते हैं सर्वदाका [illegible] उपभोग करते
हैं परन्तु इस [illegible] नहीं है [illegible] जीवनके
[illegible] जीवों
[illegible] अनुमान

[illegible]

लोंका पालना अवश्यम्भावी होजाता है। ये ग्यारह प्रतिमायें गृहस्थके लिए हैं। जिनमेंसे हरपिछली प्रतिमा हर पहिली प्रतिमाकी निस्वत विशेष बढ़ी हुई और उसको अपनेमें सम्मिलित किए हुए है। साधुका जीवन अतिकठिनसाध्य जीवन है। वह अपनेका संसारसे नितान्त विलग करके और अपनी इच्छायों एवं विषयवासनाओंको निरोधित करके शुद्ध आत्मध्यानमें लीन हो जानेका प्रयत्न करता है इसप्रकार तप व उपवास करते हुए वह अपनी आत्माको पुद्गलसे अलग कर लेता है। और कर्म और आवागमन की जड़ उखाड़ डालता है। कर्मोंके नाश होनेही जीव सर्वज्ञ और अमर हो जाता है एवं अपने स्वाभाविक आनन्दसे भरपूर हो जाता है जिसमें भविष्यमें कभी भी कमी नहीं होती है। जैनधर्मके अनुसार जीवके साथ आवागमन लगा रहता है जबतक कि वह निर्वाणपद प्राप्त न करले। कुछ जीव ऐसे हैं जो कभी भी मुक्त न होंगे यद्यपि परमात्मपद उनका भी स्वाभाविक स्थान है इसका कारण यह है कि उनके कर्म ... [illegible] ... प्राप्ति नहीं है ... [illegible] ... ज्ञान और ... [illegible] ... मार्ग ... [illegible]

सिद्धान्तशैली वैज्ञानिक ढंग की है। और इसी कारणसे उसमें किसी देवी देवताओंके लिए स्थान नहीं है यद्यपि वह प्रत्येक काल में जो अनंत समयका है, चौवीस सच्चे गुरुओं अथवा तीर्थकरों (परमात्माओं) की उत्पत्तिको मानता है। तीर्थंकर आवागमनके समुद्रके पार पहुंचनेके लिए जीवोंको योग्य मार्ग बताते हैं। ये महात्मा या महापुरुष किसी बड़े या छोटे देवताके अवतार नहीं हैं बल्कि मनुष्य हैं जो स्वतः भी उसी मार्ग पर चलकर परमात्मपद प्राप्त करते हैं जिसको बादमें वे दूसरोंको बताते हैं।

वैदिक धर्म।

यह मनुष्यकी मुख्य प्रकारके देवी देवताओंकी भक्तिके वर्णनसे संबंधित है। इन देवताओंमें तीन मुख्य हैं जो एक भी हैं और तीन भी। ये (१) सूर्य्य (२) इन्द्र और (३) अग्नि हैं।

सूर्य्य आकाशमें राजा और सरदार है। शेषके देवता उसे पथप्रदर्शक मानते हैं और वह उनको अमर जीवन दान देता है। गायत्रीका पाक मंत्र सूर्य ही के लिये पढ़ा जाता है। इस महापवित्र मंत्रका भाव इसप्रकार हैः—" हम ध्यान करते हैं इस आकाशके जीवित करनेवालेके प्रकाश पर। वह हमारी बुद्धि को खोले।"

इन्द्र वज्रका मालिक है और देवताओंकी फौजका सेनापति। इसकी एक अद्भुत सूरत हिन्दू देवताओंमें है। इस कारणके हैं हुए कि इसने अपने गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार किया था और तत्फलस्वरूप इसके शरीरमें फोड़े फुन्सी फूट निकले थे। [illegible] अग्नि उन सबका उसकी प्रार्थना पर नेत्रोंमें परिवर्तित कर दिये और इस प्रकार उसे पहिलेसे भी विशेष सुंदर बना दिया।

इन्द्रका शत्रु त्रिशिर है। "जिसकी राक्षसी (असुरों की) सेना इसके साथ सदैव संग्राम ठाने रहती है। त्रिशिर अगणित समय परास्त होता और मारा जाता है परन्तु सदैव नए सिरसे उत्पन्न हो जाता है। और फिर संग्राम करने लगता है जिसमें वह पुन: मारा जाता है। इन्द्र एक बलवान देवता है। और उत्पन्न होते ही पूछता है कि माता! कहाँ है वे प्रचण्ड योद्धा जिनके अहङ्कार (शान) को यह वज्र तोड़ेगा'। अन्तमें इन्द्र और असुरोंमें संग्राम होता है और इन्द्रकी विजय होती है।

इस वैदिक देवताओंमें तीसरा बड़ा देवता अग्नि है। यह है [illegible] पूजनीय है [illegible] सूक्तोंमें यह [illegible] गाते हैं। [illegible]

जाता है वह देवताओंका भोजन है। और इससे इनकी शक्ति बढ़ती है। चित्रोंमें अग्निकी सूरत तीन पाँव और सात हाथों वाली बनाई जाती है। पुरोहितके रूपमें अग्निको ऋषियोंने सबसे श्रेष्ठ गिना गया है जो पूजनके समस्त कार्योंसे सर्वथा अभिज्ञ है। वह बुद्धिमान अधिष्ठाता, ज्ञानवान पुरोहित और सर्व पूजन संबंधी रीतियोंका रक्षक है। इसकी सहायतासे लोग देवताओं-को ठीक ठीक नियमसे पूजा कर पाते हैं जो देवताओं द्वारा गृहीत होती हैं। (देखो, विल्किन्स हिन्दू मैथालोजी)

जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं ये तीनों देवता बहुत बड़े देवता वैदिक धर्मके हैं। इनमेंसे कोई अपने किसी सार्थक कारण सीमान्तरित नहीं है। और न कोई किसीसे बड़ा है। बल्कि सच तो यों है कि जो पद और विशेषण इनमेंसे एकके लिए व्यवहृत किये जाते हैं, वह ही अन्य दोके लिए भी बिना कोताई बड़ाईके बिचारके काममें लाए जाते हैं।

हिन्दू देवताओंकी पुस्तक [illegible] डा० म्यूर साहबकी इस कविताके [illegible] यमराजके संबंधमें लिखी है और जिसका [illegible] कविता [illegible] उसको प्रकट करती है —

असहमत-

आदमके अपराध करनेके पश्चातसे जाहवेह बराबर इसरायलको आज्ञा पालन करनेकी चेतावनी देता रहा है। बहुतसे पैगम्बर भी इसरायलोंमें हुए हैं। जाहवेहकी पूजा का कि एक अर्थमयनाम (I am) मैं हूं, है, विशेष कर प्र मजन और बलिदानकी है। जेहोवा अपनेको उद्विग्न खुदा ब है जो मनुष्योंके पापोंको, जो इनसे द्वेष करते हैं, तीसरी चौथी पीढ़ी तक क्षमा नहीं करते हैं। भविष्य जीवनके वि कब्बालाहकी गुप्त शिक्षा देनेवाले तो आवागमनको मान (ई० ए० ए० बि० ७ प० ६२६)। परन्तु शब्दार्थी फिलासफर इसे नहीं मानते हैं। यहूदी लोग एक तरह पर कयामतके म थाते हैं। और मसीहके आगमनकी याद जोहते हैं जो पु स्वरावियोंको हटाकर संसारको नया बना देगा। इनके ध संबंधी विषय, निम्नकी दस ईश्वरीय आज्ञाओंसे,-जो कहा है खुदाने हजरत मूसाको दी थीं, साफ प्रकट हैं:-

१. मेरे सन्मुख तेरे लिए दूसरा खुदा न होगा।
२. तू अपने लिए [illegible] अथवा किसी वस्तुकी मूरत मत बना
३. तू [illegible] नाम [illegible] मत ले।
४. [illegible] काम काज

परंतु सातवें दिन जो खुदावंद तेरे खुदाका सब्त है कुछ काम मत कर।

५ तू अपने माता पिताका मान कर।

६ तू खून मत कर।

७ तू व्यभिचार मत कर।

८ तू चोरी मत कर।

९ तू अपने पड़ोसी पर झूठी गवाही मत दे।

१० तू अपने पड़ोसीके घरका लालच मतकर। तू अपने पड़ोसीकी स्त्री और उसके दास और दासी और उसके बैल और उसके गधे और अन्य वस्तुका, जो तेरे पड़ोसीकी है, लालच मत कर।

वेदान्त।

वेदांत हिन्दू दर्शनोंमें विख्यात दर्शन है। और जिस मतको आजकल यूरोपके लोग Idealism (भ्रान्तवाद) कहते हैं उसके सदृश है। यह संसार जो दृष्टिगोचर होता है, यह सर्व स्वप्न व ज्ञानेन्द्रियसे जाने जाते हैं और यह सृष्टि जिसका रूप मन है, [illegible] इन्द्रिय [illegible] नहीं समझ [illegible]

ज्ञान (इलहाम) को सच्चा मान सका है। यह एक बहुत बड़ा
इन्द्रजाल है जो हमारे सामने फैला हुआ है। एक अपरिमित
बारहमासी स्वप्नका ड्रामा (नाटक) भ्रान्तिकी रंगस्थली पर
दिखाया जा रहा है। और अपूर्वता यह है कि दर्शक ही स्वयं पात्र
हैं, जो अपनेको भूले हुए हैं। इसका कारण क्या है? यह का
कैसे, क्यों और कहां प्रारम्भ हुआ? कब, कैसे क्यों और कहां
इसका अन्त होगा? कब, कैसे, क्यों और कहां उसके दर्शक
चक्कर बन गए? परंतु ये प्रश्न ही बेकार हैं। क्या यह मनुष्य
जो स्वप्नावस्थामें है ऐसे प्रश्नोंका कोई उत्तर दे सका है? नहीं।
तुमको भी उससमय तक मौन धारण करना योग्य है जबतक
कि तुम इस मायाजालमेंसे न निकल जाओ। यह विचार भी कि
तुम इस जालसे बाहिर निकल जाओगे भ्रमात्मक विचार है
तुम कब किसी जालमें थे जो इसमेंसे निकल सकनेका प्रश्न
उठाओ। यह सब अनिर्वचनीय माया है। इस विशाल मायाजाल
के अन्तर्गत केवल एक सत्तात्मक वस्तु है जो परिवर्तनरहित
सर्वव्यापी एवं स्वस्वभावसे पूर्ण है। इस सर्वव्यापक पदार्थके गुण
सत् (सत्ता) चित् (चेतना एवं आनन्द हैं। जिनके कारण
इसका नाम सच्चिदानन्द सत्-चित्-आनन्द पड़ गया है
इसका ब्रह्म भी कहते हैं। यह एक चेतन पदार्थ है। उसके अ

[illegible]के अन्य कोई पदार्थ सत्तात्मक नहीं है। जीव स्वप्नके पुतलों
[illegible] सदृश हैं। इनकी कोई सत्ता नहीं। निर्वाण यहां अर्थरहित
है। अपनेको मुक्त जान लो और तुम मुक्त ही हो। इस उच्च
सत्यको जानना आवश्यक है कारण कि इस मायावी संसारके
मायावी भ्रमोंसे छुटकारा मिले। आत्मज्ञान, आत्माको जाननेके
लिए, जो केवल एक ही सत्ता और चेतन है, आवश्यक है।
समाधिमें आत्माका भान होता है। और समाधिका अर्थ, मनको
विचारों और शारीरिक क्रियाओंसे रोककर आत्मामें लीन कर
देना है। समाधि योगशास्त्रके नियमोंपर चलनेसे प्राप्त होती है।

यह हिन्दुओंके अद्वैतके मायावादका सिद्धान्तवर्णन है।
इसके अतिरिक्त दो प्रकारके अन्य सिद्धान्त वेदान्तके नामसे
विख्यात हैं। यह अद्वैतवादसे उस सीमा तक विरोध करते हैं
इसलिए कि यह संसार और विभिन्न जीवोंकी सत्ताको, जिनको
वह वस्तुतः बन्धनोंके नाश मानता है, स्वीकार करते हैं। यद्यपि
[illegible] विशिष्ट [illegible] परन्तु
[illegible]
[illegible]

[illegible] हिन्दुओं [illegible]
है [illegible] एक [illegible]

इसने गैरहिन्दू (अहिन्दू) दर्शन पर भी भारतके बाहर प्रभाव असर डाला है क्योंकि मुसलमानोंका सूफीमत यथार्थमें वेदान्त की ही नकल है। यद्यपि इसमें वेदान्तसे कुछ विपरीतता है परन्तु हम इसपर समयाभावके कारण विचार नहीं कर सके हैं।

कपिलका सांख्यदर्शन।

यह दो पदार्थको अनादिनिधन मानता है। एक पुरुष और दूसरी प्रकृति। इनमेंसे पुरुष अथवा जीव तो केवल द्रष्टा है और क्रियामें नितान्त विलग है, प्रकृति अर्थात् नेचर (Nature) में सत्व रजस और तमस गुण है। सर्व परिवर्तनशील चक्र, समस्त अनित्य पदार्थ, समस्त विचारावतरण एवं वे समस्त इन्द्रियां, जिनपर मानसिक विचारावतरणका सदारोमदार है, सब प्रकृतिसे संबंधित है। और उसीके विविध रूप (विकार) है। पदार्थ क्रमवार एक दूसरेके पश्चात् प्रकट हो [illegible] है और पश्चात् [illegible] अप्रगट हो जाते हैं [illegible] इनमें नितान्त [illegible] इनमें सभी [illegible] परिणा [illegible]

इन २३ प्रकारकी प्रकृतिके विकारोंमें पुरुष और प्रकृतिके मिलानेसे इनकी तादाद २५ हो जाती है। यह २५ तत्त्व सांख्य-दर्शनने माने हैं। इनका ज्ञान संसारसे मुक्त होनेकेलिए आवश्यक है। कपिल मुनिके सिद्धान्तमें ईश्वरकी त्रुटिका स्थान हो ही नहीं सकता है यद्यपि कुछ पिछले लेखकोंने खींचतान करके इसमें ईश्वरवाद प्रकट करनेके प्रयत्न अवश्य किए हैं। अन्य दर्शनोंके समान योगदर्शन भी सांख्यका ही एक अंग है।

जीव, शरीर, इन्द्रियां, इन्द्रियविषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (आवागमन) फल, दुःख, और अपवर्ग (निर्वाण) प्रमेय हैं । दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या ज्ञान नष्ट करने योग्य हैं । इनके एकके पश्चात् एक नष्ट किए जाने पर, इसप्रकार कि सबसे अन्तमें जो लिखी गई है वह सबसे पहिले नष्ट हो जाय, मुक्ति प्राप्त होती है । गौतमप्रणीत सूत्रोंमें किसी सृष्टि कर्ताका वर्णन नहीं है । अवश्य एक स्थान पर बौद्धोंके शास्त्रों के उत्तरमें अनायास इसका उल्लेख हैं ।

वैशेषिक दर्शन ।

वैशेषिक दर्शनका यह मत है कि छै पदार्थोंके जाननेसे दुःखका अन्त होता है । जो सर्वोत्कृष्ट फलके सदृश है । वे छै पदार्थ यह हैं:—

(१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय । द्रव्य गिनतीमें नौ हैं:—पृथ्वी, अप् (जल) तेज (अग्नि) वायु, आकाश (ईथर) काल, दिक् (आकाश अर्थात् स्थान) आत्मा और मन । गुण इस प्रकार हैं:—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्वापरत्वे (प्रथम, अन्त) बुद्धि, सुख (आनन्द) दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न । उत्क्षेपण (ऊपरको फेंकना) अवक्षेपण (नीचेको

नियमसे अर्थ इनसे हैं कि—

(१) शौच (२) संतोष (३) तप (४) स्वाध्याय (५) भक्ति। आसन ध्यानको लगानेकेलिये शरीरको एक प्रकार निश्चल (स्थिर) करनेको कहते हैं। और प्राणायाम श्वासोच्छ्वासको अधिकारमें लानेका नाम है। परन्तु प्रत्याहारका अर्थ अभ्यास द्वारा इन्द्रियोंके रुक जानेसे है। शेष अंगोंमेंसे, धारणा, मनका एकाग्र करना, और ध्यान आत्माके विचारमें स्थिर होना है। समाधि इन सबका अन्तिम फल है। जिससे मुग्धावस्था प्राप्त होती है।

बौद्धधर्म।

बौद्धधर्मका प्रारम्भ भारतवर्षमें हुआ है। यद्यपि अब यह भारतवर्षमें लुप्तप्रायः है। इसके प्रतिपादक एक मनुष्य थे जिनको हुए अनुमानतः ढाई हजारवर्ष हुए और जो अन्तमें बुद्धके नाम से विख्यात हुए। बुद्धकी शिक्षामें किसी सृष्टिकर्त्ताको नहीं माना गया है। और आत्मा सहित सर्व पदार्थ अनित्य माने हैं। निर्वाण जीवन इच्छाका मिट जाना है। जो आवागमनका कारण है। आवागमनके विषयमें बौद्धमतावलम्बियोंकी एक अनोखी और अद्भुत सम्मति है। आत्माका आत्मत्व एक योनिसे दूसरी योनि तक बौद्धने नहीं माना है। बल्कि यह माना है कि प्रत्येक जीवके चारित्रसंबंधी संस्कारोंका संग्रह उसके मरने पर उससे

अलग हो जाता है। और नये स्थान पर पहुंच कर नये स्कंधों के साथ मिलकर प्रकट होने लगता है। बौद्धोंके मनुष्य प्रत्येक जीव केवल स्कंधोंका एक मंडल है जो मरते समय नष्ट हो जाता है। यह ही चारित्रसंबंधी संग्रह, जिसका उल्लेख ऊपर अभी कर चुके हैं, नष्ट होनेसे बचता है। अस्तु। निर्वाणप्राप्तिके लिए बौद्धमतानुसार ये प्रयत्न करने चाहिए कि जिससे यह संग्रह न रहने पावे। भारतीय धर्ममें संसारी जीवनके दुःखों पर विशेष भार दिया है और बौद्धमतने भी। जीवित रहना दुःख है परन्तु दुःख जीवनके कारण नहीं है। बल्कि इसकी उत्पत्ति इच्छाके कारण है। इच्छाका नष्ट करना बौद्धमतके सिद्धान्तमें बहुत आवश्यक है। इसी कारण बौद्धमतके सिद्धान्तमें ये चार बातें मानी गई हैं:—

(१) दुःखका अस्तित्व
(२) दुःखका कारण
(३) दुःखका हटाना
(४) दुःखके हटानेके नियम

इन चार सिद्धान्तोंका नाम आर्यसत्य है जिसका दु[illegible] [illegible] अष्ट आर्यमार्ग [illegible] [illegible] है

(१) सत्य विचार (सत्य अभिलाषायें)

(२) सत्य आकाङ्क्षायें

(३) सत्य वार्ता

(४) सत्य चारित्र

(५) सत्य जीवनक्रम

(६) सत्य प्रयत्न

(७) सत्य सावधानता

(८) सत्य आनन्द अथवा शान्ति।

इसे मार्गपर चलनेसे संसारचक्र (आवागमन) नष्ट हो जाता है। इस संसारचक्रका अस्तित्व निम्न १२ प्रकारके निदानोंके ऊपर अवलम्बित है जिनमेंसे प्रत्येक क्रमशः अपने पिछले निदानके कारणभूत है:—

(१) अज्ञानता

२ कर्म (संस्कार)

३ चेतना

४ व्यक्तित्व (नाम व रूप)

५ इन्द्रिय व मनस् [illegible]

[illegible]

६ [illegible]

र लोग आवागमनके सिद्धान्तको नहीं मानते हैं। यद्यपि कुछ विख्यात और विद्वान फिलासफरोंने जैसे अहमदबिन र, अबूमुसलिम खुरासानी (दी फिलोसफी ऑफ इसलाम पृ० २७) स सिद्धांतको प्रत्यक्षरूपमें स्वीकार किया है। पुण्य कृत्योंकी में इसलाम साधारण रीत्या दुआ, रोज़ा, हज और त्रताको मानते हैं।

ब्राह्मणोंका धर्म्म।

ब्राह्मणोंका धर्म्म, जिससे मेरा भाव हिन्दुओंके वेदोंके पश्चात् धर्मसे है, दो प्रकारका है। एक तो वह धर्म जिसमें पुराणोंमें पित देवी देवताओंकी पूजा की जाती है। दूसरा यज्ञविषयक र्म। पुराणोंके देवताओंकी एक बड़ी संख्या है परन्तु इनमेंसे ा, शिव, और कृष्ण विशेष विख्यात हैं। हिन्दुओंका ख्याल है कि यह देवता अपने भक्तोंकी प्रत्येक इच्छाको पूरा रते हैं। यज्ञ-बलिदान भी देवताओं आदिको प्रसन्न करके पना काम निकालनेके लिए [illegible] जाते हैं। [illegible] कि पाषाण [illegible] [illegible] मनुष्योंका [illegible] [illegible] करते थे। और यह [illegible] नदियों आदि पर [illegible] [illegible] बलिदान करने स्वरूप कुछ [illegible] हुआ अब तक प्रच लित थी। साधारणतया मेंढ़े, बैल और बकरोंके बलिदानका

विशेष प्रचार था। और विदित होता है कि इन तीन पशुओंके बलिदान किया अनुमानतः प्रत्येक यज्ञ विधान माननेवाले धर्मों प्रचलित थी। भारतवर्षमें गऊ और घोड़ेकी बलिदान कि गोमेध और अश्वमेधके नामसे हुआ करती थी। परन्तु अब ये दोनों ही व्यवहृत नहीं की जाती है। और प्रथमके कारण अब हिन्दू और मुसलमानोंमें बहुत कुछ विसाद और झगड़े हुआ करते हैं।

जोगियोंका मत।

जोगियोंका मत (Mysticism) अथवा शक्ति धर्म अनुमतः एक समान है। इनमें यह प्रयत्न किए जाते हैं कि योग कुछ धार्मिक शक्तियोंको, जिनका अर्थ और उद्देश्य किसी प्रत्यक्ष रूपमें समझा हुआ नहीं है, गुप्तशिक्षाके द्वारा प्राप्त कि जाता है।

रोज़ी क्रूशीयनिज़म और फ्रीमेसनरी।

[illegible] (R [illegible]) और फ्रीमेस ([illegible]) इसी प्रकारके अन्य दो मत हैं जो जीव गुरु [illegible] शक्तियोंमें सम्बन्ध रखनेका दावा करते हैं। [illegible] समस्याय ([illegible]) प्राचीन समयमें वि [illegible] समझा करनेके क्रमसे [illegible] थीं। इनकी

ाल मुख्य २ चेलोंके, जिनको यह गुप्त रूपमें बताई जाती थी, तेरिक्त अन्य किसीको नहीं विदित थी। पतञ्जलिके शास्त्रमें तसे चक्र शरीरमें ऐसे बताए हैं कि जहां ध्यान लगानेसे कुछ क्तियां प्राप्त हो जाती हैं। इन सब मतोंका यथार्थ भेद यह है के मुख्य २ क्रियायोंसे विशेष कर शरीरके कुछ चक्रों पर ध्यान गानेसे आत्मिक शक्तियां प्राप्त होती हैं। जिनका प्राप्त करना ायनका उच्चतम उद्देश्य है। चाहे यह केवल उद्देश्य भी न हो।

राधास्वामी।

वर्त्तमान समयमें राधास्वामी मतने जो गत शताब्दिके अन्तिम भागमें स्थापित किया गया था कुछ लोगोंकी दृष्टि अपने ओर आकर्षित की है क्योंकि इसकी शिक्षाका एक भाग ऐसा है जो इसके माननेवाले, औरों पर सम्भवतः किसी प्रकार शपथपालके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे प्रकट नहीं करते हैं। उसके संस्थापककी उपासना परमात्माके सदृश होती है। और इनके अन्य गुरुओंकी भी मान्यता इस पराकाष्ठाको लिए हुए है कि उनके अनुयायी उनके वाज नाज मुंहसे निकले हुवे पदार्थों माहह। को नम्रभावसे चख लेते हैं। राधास्वामियोंकी शिक्षा हिन्दुओंके विष्णु सम्प्रदायके सदृश है। परन्तु यह हिन्दू अवतारोंको नहीं मानते हैं [illegible]

सूफी मुसलमान पीरों और अर्ध पीरों जैसे शम्सतबरेज़ वगैरः की, जिनको वे अपने धर्मके पैगम्बर बतलाते हैं, राधास्वामियों मतकी मुख्य बात है।

अब साधारणतया सर्व मुख्य धर्मोंका वर्णन हो चुका है शेषमेंसे जापानी धर्म शिन्तो (Shintoism) पत्थरकी पूजा व जादू टोनेकी खिचड़ी है। इसके होते हुए भी जापानि आत्माको नित्य माना है और बहुतसे बहादुरों और विरल पुरुषाओंके विषयमें यह विचार है कि वह सीधे उच्च आक पर जा विराजे। (इ० र० ऐ० जि० १ पृ० ४५७।)

बाब या बहाई मत।

बाब मत या बहाई मत, जिसकी शिक्षा मुसलमानोंके भवि इमाममें, जिनके विषयमें कहा जाता है कि वह इस सम छुपे हुए प्रकट होनेके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, संबंध रख है। यह धर्म इसलामका एक नवीन शाखा है और इ संस्थापकने अपनेको छुपा हुआ इमाम बनाया है

प्रकीर्णक मत।

भारतीय धर्मोंमें कबीरपन्थ, दादूपन्थ, सिक्खोंका मत ब्राह्म समाज ना नवविकसित धर्म हैं जो अपने अपने सं स्थापक [illegible] सुधार) के विचारोंके फलरूप हैं।

सिक्खोंका मत पहिले हिन्दू और मुसलमानोंके मिलाप करानेके लिए बनाया गया था यद्यपि अन्तमें मुसलमानोंका सिक्खोंसे इतना द्वेष बढ़ गया जितना कि हिन्दुओंसे भी न था। यह सब धर्म भक्ति पर अवलम्बित हैं। और आवागमनके समर्थक हैं। इनमें भारतीय धर्मोंमें ब्रह्मसमाज पाश्चात्य ढंगमें ईश्वरोपासना का मत है। यह अन्तिम शताब्दिमें बंगालमें स्थापित हुआ था। और इसके एक शिष्य एवं उपदेशकने जिसका नाम शिवनारायण अग्निहोत्री है अन्ततः अपने आप एक स्वतंत्र धर्म स्थापित किया जिसका कि नाम उसने देवसमाज रक्खा। देवसमाजके उद्देश्योंमें एक यह भी है कि यदि आत्मा उन्नति प्राप्त कर उत्कृष्ट जीवनको, जो किसी एक मनुष्यकी संगतिसे प्राप्त हो सकता है जो स्वयं उस अवस्थाको पहुंच चुका हो, प्राप्त न करले तो वह नष्ट हो जाती है। देवसमाजके संस्थापकके विषयमें कहा जाता है कि वह मनुष्य जीवनकी उच्चतम पराकाष्ठा तक पहुंच चुका है [illegible]

[illegible]

[illegible]

इसके प्राचीन धर्म उस देशका तावइज़्म (Taoism) है इसका विवेचन हम दसवें एक व्याख्यानमें करेंगे।
चीनियोंका एक अन्य धर्म कनफ्यूशियनइज़्म (Confucianism) नामसे है जिसका संस्थापक एक कनफ्यूशस (Confucius) नामक था, जिसको हुए ढाई हजार वर्षसे कुछ विशेष समय व्यतीत हुआ है। परन्तु यह धर्म अनुमानतः सबका सब केवल एक आचारसंबंधी शिक्षाका विधान है जैसा कोई विद्वान पुरुष रच सकता है। और धर्मसे इस प्रकार असंबन्धित प्रतीत होता है कि हम इसका विवेचन इन व्याख्यानोंमें नहीं करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि यह संभव हो कि कनफ्यूशियनइज़्मके सिद्धांत गुप्त हों, जैसे कि अन्य बहुतसे धर्मोंके हैं। परन्तु यदि ऐसा है तो यह विशेष उपयुक्त होगा कि जापानीके इससे विशेष विद्वान् उसकी जांच करें। चीनके प्रचलित धर्मोंमेंसे तीसरा धर्म बौद्धमत है जिसका विवेचन इस व्याख्यानमें पहिले ही किया जा चुका है।

अमेरिकाके धर्म।

अब अमेरिकाके धर्मोंका विवेचन करना [illegible] रह गया है परन्तु यह [illegible] मुझे [illegible] है कि [illegible] धर्मसे [illegible] मानते हैं और केवल एक [illegible] इनके अतिरिक्त [illegible] इन

में कहीं कहीं मिलती है, अनुमानतः सब अधमतर और भयावह मनुष्य बलिदानसे, बिदून किसी अच्छाईके भरे पड़े हैं। यदि इन धर्मोंकी कभी कोई शुभ सिद्धांतावली थी तो यह बहुत काल व्यतीत हुआ कि नष्ट हो गई और उसके स्थान पर ये बुरीसे बुरी ग्लान्युत्पादक मनुष्य बलिदानकी क्रियायें स्थापित हो गईं जिनका कि कोई भी संबंध धर्मसे नहीं है। यह असंभव नहीं है कि यह राक्षसी धर्म भूतकालमें किसी ऐसी सूखी हुई शुष्क धार्मिक तत्त्वावलीकी गुठलीके इर्द गिर्द उत्पन्न हो गए हों जो किसी समयमें एशिया अथवा योरोपसे अमेरिका पहुंची हो। मैं उनका इन व्याख्यानोंमें राक्षसी रीति रिवाज और भूतप्रेतकी पूजा समझ कर विवेचन नहीं करूंगा।

उपसंहार।

हमारा पर्यालोचन समाप्त [illegible] समाजके विषयमें इसप्रकार सम्पूर्ण हो जाता है। और मुझे केवल इतना ही खेद है कि वह ऐसा पूरा नहीं है जैसा मैं उसे करना चाहता था। यहां पर उन पुराने लुप्त समाजों [illegible] बेबीलोनिया असीरिया, और मिस्र देशमें आविर्भूत हुए थे और जिनमें हम बहुत कुछ सहायताकी आशा रखते थे उनके सिद्धान्तोंके [illegible] रखते थे, वर्णन नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि हमारा ज्ञान

इन धर्मोंके विषयमें इतना पांडित्य है और ऐसे क्रमपूर्ण और अविच्छिन्न कोशोंसे प्राप्त है कि यह विशेष उपयुक्त है कि उनकी भी विवेचनाका भार जाननेके विशेष विद्वान्के ऊपर छोड़ा जाय बजाय इसके कि प्रारंभसे ही क्रमपूर्ण और क्रमात्मक सूत्रों की नींव रक्खी जावे। तो भी मैं इन दोनोंके कुछ धर्मोंका वर्णन किसी आगामी व्याख्यानमें उस सीमातक करूंगा जिस तक मैं सेहतके साथ कर सकता हूं।

छोटे मोटे सम्प्रदायों और सिद्धान्तिकमतों जैसे न्यूप्लेटोनिज्म (Neo-Platonism) फिथागोरिसका मत आदिका विवेचन यहां पर जान कर नहीं किया गया है क्योंकि इनके सिद्धान्त अन्य धर्मोंकी तुलनासे समझे जा सकते हैं। और समयका भी अभाव है। मैंने चार्वाक मतके विषयमें भी यहां पर कुछ नहीं कहा है कारण कि मैं उनका विवेचन पुद्गलवाद वर्णनमें करूंगा।

मुख्यतः इनके समान मुख्य धर्मोंका विवेचन पूरा होने पर यह प्रश्न उपस्थित रह जाता है कि वह कौन से [illegible] हैं जिन पर ये सब धर्म सहमत हैं एवं वे कौन से [illegible] हैं जिन पर वह आपसमें भिन्न हैं [illegible] उत्तर। निम्नलिखित विषयों पर ये सब धर्म सहमत प्रतीत होते हैं —

[१] भविष्य जीवन, और भविष्य हालत

[२] आत्माकी शरीरसे विभिन्न सत्ता, सिवाय बौद्ध धर्मके कि जहां पर संस्कारोंको [कर्मवर्गणाओंको] आवागमनका कारण माना गया है।

[३] भविष्यके जीवनकी उत्तमताकी संभावना

[४] आत्माको भले बुरे कार्योंके कारणसे अपनी भविष्य जीवनीको बनाने और बिगाड़नेमें स्वतंत्रता।

[५] एक प्रकारकी ईश्वरीय (Divine) जीवनकी सत्ता जिसका प्रकाश कुछ ऐसे मनुष्योंमें हुआ है कि जिन्होंने परमात्माका पद प्राप्त किया हो अथवा देवताओंमें व यह दानियलके मतानुसार एकही खुदामें।

इन धर्मोंमें विपरीतता भी निम्न बातोंमें प्रकट होती है:—

[१] परमात्माके स्वभाव, रूप और नाम एवं संख्या और कार्य।

[२] सृष्टिका स्वरूप और उसका आरम्भ।

[३] आत्माका स्वभाव एवं उन्नतिकी सीमा, मय आवागमन और कयामतके। और

[४] आत्माके अपने उद्देश्यका ज्ञान करानेके मार्ग, मय ईश्वर द्वारा अनुग्रह और पशुओंके बलिदानके।

उपर्युक्त वर्णित व्याख्यायोंमें अनुमानतः सब बातें एकता और विरोधकी आ जाती हैं। और यह ठीक ठीक तौरसे उसे हल करनेकेलिए, जो धर्मके प्रारम्भ और उसके विविध रूपान्तरोंमें विभक्त होनेसे सम्बन्ध रखती है, उचित है।

अब हम उस स्थान पर पहुंच गए हैं कि जहां आजके व्याख्यानका विषय खतम होता है अतः हम इसको बन्द करते हैं और द्वितीय व्याख्यानमें इस बातका वर्णन करेंगे कि मानसिक उत्कृष्टता क्या है और वह कैसे शीघ्र प्राप्त हो सकती है।

इति शम्।

रखदेता है। यह बात न्यायपर निर्भर है कि कोई सिद्धान्त उस समय तक निर्णीत नहीं हो सकता जब तक अनुसंधान करने वालेके अन्तःकरण पर इस प्रकारका द्वेष भाव रहता है। जो वास्तवमें जिज्ञासु है और अन्तःकरणसे सत्यताका खोजी है उसका अन्तःकरण ऐसा नहीं होना चाहिये। पैतृक धार्मिक विश्वास तो एक विशेष वंश और कुलमें जन्म लेनेपर निर्भर है परन्तु यह इसकी सत्यताका प्रमाण नहीं है। यदि मैं "क" धर्मके स्थानपर "ख" में उत्पन्न होता तो अवश्य मेरा धर्म "ख" होता यदि "ग" में उत्पन्न होता तो "ग" होता परन्तु मेरा "क" धर्मका स्वीकार और 'ख' 'ग' का अस्वीकार इस बातका प्रमाण नहीं है कि 'क' धर्म्म ही सच्चा धर्म्म है क्योंकि जो लोग "ख" व "ग" में उत्पन्न हुये हैं वे भी अपने धर्मोको वैसा ही सत्य २ समझते हैं जैसा कि मैं "क" धर्मको मानता हूं। अतः किसीकी निज सम्मति उसके सिद्धान्तोंका प्रमाण नहीं हो सकती और न शास्त्रोंके वचन;-जैसा कि हमने पहले व्याख्यानमें दर्शाया है, सत्यताके प्रमाण हो सकते हैं क्योंकि कोई कारण नहीं है कि एक शास्त्रको दूसरे पर विशेषता दी जावे। इसका भाव यह नहीं है कि हम एकदम सब शास्त्रोंको झूठा मान लें परन्तु यही कि सबसे प्रथम हमको यह जान[illegible] है कि उनमें ऐसा कौन

लिये निश्चयात्मक सत्यतासे सहमत होगा। यह स्वयं [illegible]
मात्माका वाक्य बुद्धिसे बाहर है स्वयं खिलाफ बुद्धि है
सर्वज्ञता और बुद्धिमत्ता दो विरुद्ध बातें नहीं हैं, अतः
फिलासफीकी यों तारीफ करना चाहिये कि यह
जिसमें:—

१–हालात अनुभव (प्रत्यक्ष) से पाये जाते हैं।
२–परिणामोंकी जांच न्यायसे होती है।
३–और सत्यताका अन्तिम निर्णय शास्त्रसे किया कि सर्वज्ञका असत्य न होनेवाला वाक्य है।

और वास्तवमें जहां इन तीनोंकी एकता हो वहांपर औरर्[illegible]शास्त्रार्थकी जगह नहीं रहती है। विज्ञानका अनुभव है जिसकी विवेचनासे कारण और कार्यका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। वस्तुओंके गुण और उनके (कीमियाई गुण) कार्य्य, कारणका काम करते हैं और वस्तुओंके क्रिया और कीमियाई असरसे पैदा होते हैं। हलवेकी मिठाईका कारण शक्कर है इसलिये जहां [illegible] शक्कर नहीं डाली जाती वहां हलवेमें मीठापन भी नहीं [illegible] यहां [illegible] है ताकि यह यहां [illegible] वस्तु[illegible] पाया जाता है और यह पूर्णरूपसे निश्चय [illegible] नहीं एक चीज है कि जिसके ऊपर

विद्यार्थ और फतई नतीजा पैदा करनेके लिये विश्वास किया जा सकता है।

न्यायके खास २ साधन निम्न लिखित हैं:—

अकली नतीजा (अनुमान)
प्रकरण (किस्म) का निश्चय या
अनेलिसिस (Analysis) जो सामग्रीका ज्ञान करावे। } तर्क

और

( ) नयवाद या निस्बत (लिहाज निस्बतीका मद्द नजर रखना)

इनमेंसे अनुमान (अकली नतीजा) सही राय लगानेका साधन है। प्रकारनिश्चय (तकसीमकिस्म) प्राकृतिक पदार्थोंको अनुकूल सही २ विभक्त करना, छानबीन (analysis) सही २ पदार्थोंके अंगोंको ज्ञान करनेका और नयवाद सत्यताके विविध दृष्टिकोणसे समझनेका नियम है। हम इन सब बातोंपर इस व्याख्यानमें विवेचना करेंगे और वह नियम भी बतावेंगे जिससे एक साधारण बुद्धिके विद्यार्थीको न्यायपर पौनघंटाके अंदर २ पूरा विज्ञान प्राप्त हो जाय। सबसे पहली वस्तु जाननेके योग्य यह है कि तर्कमें अभ्यास प्राप्त करनेकेलिये यह नितान्त अनावश्यक है कि मनमें कठिन और परेशान करनेवाली परिभाषायें, जो आजकल तर्ककी पुस्तकोंमें पाई जाती हैं, बलात्कार

ता ही और एक ही धातुकी बेरी घड़ी बनी हुई हो और
पि दूसरी धातुकी न हो। यदि सोमवारके बाद मङ्गलके होनेमें
ई एक भी अन्तर होता तो आप निश्चयसे यह नहीं कह सकते
कल मंगल ही होगा क्योंकि यह सम्भव है कि कल ही यह
तर हो जिस सूरतमें कल मंगल न होकर कोई दूसरा दिन
गा। इन उदाहरणोंसे हम यह परिणाम निकालते हैं कि जहाँ
ही एक निश्चित नियम है और कोई अन्तर नहीं है केवल
हां ही तार्किक परिणाम निकाला जा सकता है परन्तु ऐसे
यमकी अनुपस्थितिमें अथवा ऐसी सूरतमें जहां ऐसा नियमित
ौर कभी न बदलनेवाला नियम नहीं है, कोई परिणाम नहीं
काला जा सकता है। यही एक सरल और सीधा मार्ग न्याय
ा है जिसको हरएक व्यक्ति थोड़ा बहुत जानता है। यदि किसी
हाईको पुस्तकमें इस छोटीसी बातको बहुत पेंच पेचसे वर्णन
[illegible] यह [illegible] करना पड़ेगा कि [illegible] अपने सिद्धांतके
[illegible] नियमके [illegible] परिणाम
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

२– यह स्थान धुएँका है।

अब अलबत्ता हम यह परिणाम निकालनेके अधिकारी हैं कि "अतः यह धुआं भी आगसे पैदा हुआ है।"

कुदरती मन्तकमें, जिसको केवल एक नियमित साधनकी जरूरत है इस प्रकारकी कष्ट और उलझनें नहीं उठना पड़तीं मैं आपसे यहां पर यह कहना उचित समझता हूं कि हेतु (Middle term) में कोई विशेष जादूकी शक्ति नहीं है कि जिसके कारण वह येन केन प्रकारेण पाश्चात्य तर्ककी सत्यताको गारंटी करदे। वह सामान्यतः केवल कुदरती तर्कके नियमोंको बयान करनेका एक दूसरा परन्तु उलझन पैदा करनेवाला तरीका है क्योंकि हम औसतको उसी समय "आम" कहते हैं कि जब कि उसका प्रयोग सब अवस्थाओंमें हो अर्थात् जब कि उसमें कोई व्यतिरेक न हो। पाश्चात्य तर्क इस बातको स्वीकार करनेकेलिये बाध्य है कि तार्किक परिणाममें सदैव मनकी ओरसे इस बातका प्रयत्न होता है कि उन सर्व साधारण सिद्धान्तोंको ज्ञात करे कि जिन पर कुदरतमें वस्तुओं और घटनाओंका एक दूसरेसे सम्बन्ध होता है। और इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त करनेके लिये मनको उस ज्ञान पर भरोसा करके आरम्भ करना पड़ता है, जो उसको प्राप्त है।

जब साधारण सम्बन्धका निश्चय ज्ञान हुआ है और इसका

यह होती है कि विशेष वस्तु वा घटनाके ... जावे तो उस समय उसको "अनुमान" (Deduction) है। परन्तु जहां उद्देश्य यह है कि अनुभूत घटनाओंमेंसे एक दूसरेसे साधारण सम्बन्ध ढूंढा जावे तो उस समय नियमको,—जो प्रयोग होता है तर्क (Induction) कहते (देखो Banerjee's hand book of deductive Logic 81- 82.)

यही साधारण और आवश्यक तार्किक सिद्धान्त हैं पाश्चात्य विद्वानोंकी पुस्तकोंमें क्लिष्ट नियमोंमें बयान किया है अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कालिजके ... मस्तिष्क भी इसके समझनेमें चकरा जावे। यह बात ध्यान योग्य है कि बनावटी पाश्चात्य तर्क अपने परिणामकी ... जिम्मेवार नहीं है यद्यपि कुदरती है। मैं फिर ... महोदयकी पुस्तककी साक्षी दूंगा जिसमें डाक्टर ... निम्न भांति शब्द पाये जाते हैं:—

" अनुमान (Deductive reas n) में हम पक्षोंमें हुए भावोंसे परिणाम निकालते हैं, पक्षोंके भावोंसे हम उस धाम पर पहुंचते हैं जो उनमेंसे लाजमी निकलता है तो भी हमको सत्यताके जिम्मेवार नहीं हैं। निःसन्देह अगर उनका सत्य है तो परिणाम अवश्य सत्य होगा अतः यह सिद्ध है

ानुमान द्वारा जो परिणाम हम निकालते हैं वह अनुमानमात्र जिसकी सत्यता पक्षोंकी सत्यता पर निर्भर है।" बनावटी गौर कुदरती तर्कका इस बारेमें मुकाबला करनेकेलिये निम्न-लेखित दलील पाश्चात्य तर्कके नितान्त युक्तियुक्त है।

१–सब मनुष्य निर्बुद्धि हैं।

२–सुकरात एक मनुष्य है।

३–इसलिये सुकरात निर्बुद्धि है।

परन्तु स्वाभाविक तर्क द्वारा इस प्रकारका परिणाम निकालना असम्भव है–क्योंकि वह वहीं पर नतीजा निकालेगा जहां कोई नियमित सिद्धांत हो। परन्तु ऐसा कोई नियमित सिद्धांत नहीं जिसके अनुसार यह कहा जावे कि सब मनुष्य निर्बुद्धि हैं यह ध्यान रखना चाहिये कि हरएक व्यवस्थासे तार्किक परिणाम नहीं निकल सकता चाहे जितना पुराना हो और चाहे जितनी कड़ाईसे उस पर अमल होता हो। उदाहरणके लिये यदि कोई व्यक्ति गत ४० वर्षसे बराबर प्रातः काल मेरे मकानके सामनेसे जाता है तो हम इससे यह नहीं सिद्ध कर सकते कि वह कल भी अवश्य ही मेरे मकानके सामनेसे निकलेगा क्योंकि हजारों बात उसके निकलनेमें बाधक हो सकती हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि आगाती तक जिसको संस्कृतमें "व्याप्ति" कहते हैं एक ऐसा नियम है जो न भूत कालहीमें सही पाया गया है किन्तु आगामीमें भी

नहीं रहता है। शास्त्रोंका असली कर्तव्य यही है [illegible] सिद्धान्तोंका निपादन करनेवाला और प्रामाणिक [illegible] भांति होना समुचित है। अब हम जरा देर प्रचकारा विविध तरीकोंके तर्कके नियमों पर गौर करेंगे। निम्न चार तरीके प्रचलित रहे हैं—

१—जैनोंका नियम

२—न्यायका नियम

३—बौद्धोंका नियम

४—योरोपका नियम जो अरस्तूके नामसे विख्यात है

इस व्याख्यानमें जो कुछ हमने तर्क (न्याय) के बारेमें कहा यह जैनोंके नियमानुसार है। न्यायवाले परिणामको सदृधर्मी (हमजात या हमजिन्स) उदाहरण पर निर्भर कहते हैं पहले किसी समय रसोईमें धुवां देखा गया था जहां आग थी पहाड़की चोटी पर धुवां दिखाई पड़ता है [illegible] पर भी आग है। इसी प्रकारकी युक्तिपर नैयायिक साध्य सिद्धि करते हैं। यहां पर किसी सत्य विज्ञानानुसार [illegible] व्याप्तिका सम्बन्ध नहीं है। साध्यकी सिद्धि किसी [illegible] और न परिवर्तन [illegible]। नियमके आधार पर नहीं है किन्तु एक सदृधर्मी उदाहरणके [illegible] निर्भर है। यह दोष भी जिनके

र तार्किक परिणाम निकालेंगे जब यह उसको किसी सत्य सम्बन्ध (व्याप्ति) पर कायम कर सकते हैं। नीचे लिखी मिसालमें नैयायिकोंकी सब आवश्यकताओंका लिहाज रक्खा गया है। तो भी परिणाम वह है जिसकी सत्यताका कोई तार्किक जिम्मेवार नहीं हो सकता है। मिसाल—

१– जैद की स्त्रीके गर्भमें आया हुआ बच्चा पुत्र है।

२– क्योंकि वह जैदका पुत्र है।

३– मिस्ल जैदके तमाम बच्चोंके, जो सब लड़के हैं।

इस स्थलपर युक्तिका चिन्ह (जो जैदका बच्चा होना है) सहधर्मी है जो न व्यभिचार है और न किसी प्रकारसे असंगत है परन्तु इसमें कोई निश्चयात्मक सम्बन्ध पुल्लिंग अथवा स्त्री लिंगसे नहीं है इसलिये इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि जैदकी स्त्रीके गर्भमें आया हुआ बच्चा अवश्य ही लड़का होगा। इस उदाहरणमें हेतु कुल सहधर्मी उदाहरणोंमें साध्यके साथ संबंधित पाया जाता है। यह व्यभिचार नहीं है क्योंकि जैदका बच्चा होनेका विरोधन एक भी लड़कीमें नहीं पाया जाता और न यह असंगत है क्योंकि वह वास्तविक तमाम समय गर्भमें आये हुये बच्चेमें मौजूद है और नतीजा निकालनेके समय भी।

गौतमके न्यायकी इस निर्बलताको प्रायः लोग इस भांतिसे दूर करनेकी कोशिश करते हैं कि यह सम्भव है कि गौतमका

कोई भी पदार्थ अक्षय अथवा नित्य नहीं है जिसका नतीजा
होता है कि हम यह माननेके लिये बाध्य होते हैं कि पदार्थ
रैव असत्से उत्पन्न होते हैं और पुनः नष्ट हो जाते हैं। क्षणिक-
इकी त्रुटिका यही कारण है कि पदार्थोंका अनित्यपन उनकी
र्यायोंतक ही परिमित है और उस प्राकृतिक मसाला तक,
सकी वह बनी हुई है, नहीं पहुंचता है। यह एक उदाहरण
वादके नियमोंको समझनेकेलिये पर्याप्त है और हमको
तर्की परिणाम पर अड़ बैठनेसे रोकता है। हर एक पदार्थोंके
इसे पहलू हुआ करते हैं और ऐसे ही नयवाद भी बहुत
रके हैं परन्तु इनमेंसे ज्यादा आवश्यक नयवाद निम्न
लिखित प्रकारोंके हैं—

नयवाद

निश्चय	व्यवहार
जैसे एक मिट्टीके घड़ेको जिसमें जल भरा हो [illegible] घड़ा इसके [illegible] कहना	जैसे पानीसे भरे हुये मिट्टीके घड़ेको जल का घट कहना क्योंकि उसमें पानी भरा है।

द्रव्यार्थिक	पर्यायार्थिक
[illegible]	जो पदार्थोंको उनकी [illegible] ओंके अनुसार प्रकट [illegible]

तीसरा व्याख्यान।

—:०:—

विज्ञान (क)

आजके व्याख्यानका विषय "वैज्ञानिक धर्म्म" है परन्तु शब्द
ानिक' किसी कदर भ्रमकारक है क्योंकि आजकल जो भाव
ानका है उसका अर्थ प्रकृतिवादियोंका ज्ञान है जो किसी
ाको नहीं मानते हैं। वैज्ञानिक धर्म्मसे मेरा भाव इस स्थल
धर्म्मके "विज्ञानसे" है अथवा इस बातसे कि धर्म्म एक
ान है। किसी समुदाय अथवा किसीके मनोरों (विश्वास)
हीं है।

विज्ञान, अज्ञानका विरोधी है और द्रव्यों और उनके गुणों
पदार्थोंके वास्तविक कारणोंके जाननेका नाम है। विज्ञानसे
द ऐसे जानते हैं जो संशय विपर्यय और अनध्यवसायसे
त हैं और जिनका अनुसंधान अनुभवसे हो सकता है। अर्थात्
रे २ ज्ञानको ही 'विज्ञान' कहते हैं और सही सही ज्ञान सच्चो
ोके अनिवार्य अनुभव और तार्किक सत्यसे हो परिमित
देवाने मनुष्यको ज्ञान हो सकता है। विज्ञानका पहला उसूल
र [illegible] को स्थिते है इसका भाव यह है कि द्रव्य
र उनके गुण सदैवके हैं और कभी नहीं बदलते हैं। वह कभी
र नहीं होते हैं और न कभी नेस्तीसे हस्तीमें आते हैं। यह

बात मनुष्यके वर्तमान और भूत कालके अनुभवसे सि
और जिस अनुभव पर यह बात निर्भर है वह किसी
पुरुष या स्त्री का अनुभव नहीं है, न किसी विशेष फ़िर्के या
हका, किन्तु सब मनुष्य जातिका, जिसमें कोई भी व्यतिरेक
है क्योंकि बावजूद इसके कि लोग संसार और सृष्टि-उत्प
निस्बत चाहे जो सम्मति रखते हों, तो भी एक मनुष्य भी
नहीं पाया जाता जो अपने निजी अनुभवसे यह कहनेके
तैयार हो कि उसने पदार्थोंको अस्तित्वसे नष्ट होते या नै
अस्तित्वमें आते हुए देखा है।

क़ानून कुदरत (लोकस्थिति) का नियम यह बता
कि द्रव्य सदैव कायम रहनेवाला अर्थात् 'नित्य' है। यहां
कि जो कुछ वास्तवमें मौजूद है उसका कभी नाश नहीं होत
जब कि एक वस्तु देखनेमें नष्ट हो जाती है तो यथार्थमें उ
केवल सूरत बदल जाती है। यह नहीं होता कि वह नि
मनुष्ये असत् हो गई हो। जैसे उस मिश्रीकी डलीकी, जो
अथवा पानीमें घुल जाती है, केवल सूरत बदल जाती है
यह स्थूल दशासे अजरूपको प्राप्त हो जाती है। ५—
का वास्तला हवाकी नमीका जलके बिन्दुओंकी सूरतमें
होकर पृथ्वी पर गिरता है। ऐसा नहीं होता कि बादलोंके
कोई ऐसा [illegible] बढ़ कर नेस्तीसे अस्तित्वमें लाकर
बरसाया है। [illegible] पानी भाप बन जाता है और भाप

सर्दी पाकर रकीक (पानी) हो जाती है। जैसा हेकल साहब कहते हैं-"संसारमें हम कहीं प्रकृतिकी असलासे सत्तामें आने या पैदा किये जानेकी कोई मिसाल नहीं पाते हैं, न कहीं कोई अस्तित्व पदार्थ बिलकुल नाशसे पैदा होता पाया जाता है। यह अनुभूत बात जिस पर अब कोई एतराज नहीं करता है कीमिया केमिस्ट्री की जड़ है और उसका अनुसंधान प्रत्येक पुरुष तुला द्वारा कर सका है" (दि रिडिल ऑफ दि युनीवर्स)

द्रव्यकी व्यवस्थाका नियम यह है कि पदार्थोंके गुण व विशेषण भी नित्य हैं यद्यपि विविध द्रव्योंके मिलनेसे इनमें परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे रूप व गंध इत्यादि गुण जो प्रकृति (पुद्गल) में पाये जाते हैं सदैवसे प्रकृतिमें मौजूद हैं और सदैव रहेंगे। सत्य यह है कि द्रव्य और उसके गुण एक ही पदार्थकी दो सूरतें या पहलू हैं क्योंकि द्रव्य अपने गुणोंसे पृथक् कोई वस्तु नहीं हो सकती है। यह कहना इसके बराबर है कि गुण द्रव्य ही में रहते हैं और द्रव्य गुणोंका ही समूह है जैसे सोना अपने सब गुणों पीलापन भारीपन, द्रव्यत्व इत्यादि २ के समूहका नाम है और उससे पृथक् कोई पदार्थ खयाल नहीं किया जा सकता है। द्रव्योंमें उत्पत्ति स्थिति और नाश एक ही साथ पाये जाते हैं, जब कि हम एक सोनेकी गलासको कुण्डलोंमें बदलते हैं तो गलासपनका नाश होता है, कुण्डलपनका प्रारम्भ होता है और सोनेकी स्थिति सोनेकी भांति बनी रहती है यह तीन प्रकारका कार्य द्रव्यका है।

हम यह कहनेकेभी अधिकारी नहीं हैं कि सजातपनका नाश व
रक्तीकपनका आरम्भ एक ही समयमें नहीं होता क्योंकि इन
कोई अन्तर नहीं होता है अर्थात् रक्तीकपनमें परिवर्तन होना
सजातपनमें टूटनेकी सूरत है। यदि आपने सोनेकी इन दो
हालतोंमें कोई अन्तर माना तो आप यह कहनेकेलिये ब
होंगे कि सजातपनके नष्ट होने पर सोनेकी पहले कोई स
स्थिर नहीं रही और यादमें उसका रक्तीकपन भी असत्, अर्थ
नेस्तीसे सत्तामें आया परन्तु यह नितान्त नियमविरुद्ध है
क्योंकि पदार्थोंकी सत्ता, बिदून किसी लिङ्ग या स्वरूपके उ
में नहीं आ सकती है।

संसारमें दो विशेष प्रकारके द्रव्य पाये जाते हैं एक ज्ञानद
दूसरे बेज्ञान। पहले कहे हुए वह हैं जिनमें चैतन्य या जीवन
और दूसरे जो बेज्ञान हैं, जैसे प्रकृति। इनके पारमार्थिक न
जीव (चेतन) और अजीव बेजान। हैं हम इनको जड़ औ
चेतन भी कह सकते हैं। इस समयका विज्ञान आत्मिक द्रव्य
सत्तासे इन्कारी है और चेतनता को प्रकृति (पुद्गल) का गु
मानता है परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक लोगोंको जीवनके प्रारम्भ
समझानेमें बड़ा कठिनाइया पड़ता है, और यह लोग जीवन
इस संसारमें पहली बार प्रादुर्भूत होनेके निमित्त आश्चर्यजन
कल्पनायें किया करते हैं। कतिपय पुरुष ख्याल करते हैं कि
जीवनका अंश या बीज पहले किसी दूसरे ग्रहसे पृथ्वी पर गिर

कतिपय कहते हैं वह स्वयं सत्तात्मक है और भी इस प्रकारकी सम्मतियां हैं जो लोगोंने जीवनके लिए निर्धारित की हैं। हम सबसे पहले उस खयालका अनुसंधान करेंगे जो चेतनताके प्रारम्भिक अंशको पौद्गलिक परमाणुमें कायम करता है। यह खयाल किया गया है कि चेतनाका यह प्रारम्भिक अंश शनैः २ बढते २ कैंट (Kant) शोपेन हॉअर (Schopen Hauer) टिंडल (Tyndall) जैसे प्रसिद्ध बुद्धिमानोंकी तीव्र और जबरदस्त समझ बन गया और इससे भी ज्यादा उन्नति कर सकता है। इस विचारके अनुसार चेतनताकी उत्तमसे उत्तम सूरतें इस प्रारम्भिक अंशको 'तिहृत' (वृद्धि) से प्राप्त होती हैं परन्तु यह केवल एक भ्रम है और उसका आधार दो प्रकारके वैज्ञानिक नियमों और एक प्रकारकी धार्मिक त्रुटि पर है। वह नियम ये हैं—
(१) प्रकृतिका असर चेतनाकी पर्यायों पर होता है और
(२) सब प्राणियोंमें एक ही प्रकारकी बुद्धि नहीं पाई जाती है। और त्रुटि यह है कि वह पदार्थ जीव ही नहीं है जो सदैव और हर समय पर एक ही अवस्थामें स्थिर न रहे। अनुभूत बातोंके अतिरिक्त कुछ कुछ नहीं कहना है, वह निश्चित है और उनका खण्डन नहीं हो सकता है। सत्य तो यह है, जैसा हम देखेंगे, कि धार्मिक विज्ञानने भी उनका पूरा २ लिहाज रक्खा है।

प्रोफे. हैकल साहबकी विख्यात पुस्तक 'रिडिल ऑफ दि युनिवर्स' के निम्नलिखित वाक्य प्रकट हैं:—

"इन और अन्य ज्ञात घटनाओंसे यह प्रत्यक्ष है कि मनुष्यकी चैतन्यशक्ति और उसके निकटस्थ हुए निचले वाले पशुओंकी भी चेतनता परिवर्तन होनेवाली वस्तु है और उसकी शक्ति आन्तरिक और बाहरी कार्योंसे जैसे रुधिरका दौरा वगैरा और भेजेकी चोट औरमुसकरलानेके प्रयोगसे परिवर्तित होती रहती है । जीवित शरीरमें चेतनताकी वृद्धि इस बातका द्योतन करती है कि यह कोई अमरत्तात्मक पदार्थ नहीं है, किन्तु भेजेका एक प्राकृतिक कार्य है और इसलिये यह द्रव्यसंबन्धी नियमोंसे व्यतिरिक्त नहीं है।"

सत्य यह है कि धार्मिक विज्ञानने कभी जीवको हैकल साहबके अर्थोंमें कोई 'अमरत्तात्मक पदार्थ' नहीं माना है और न यह कभी माना है कि उस पर प्राकृतिक प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओंको जिस समाजसे मुकाबला पड़ा वह सत्य धर्मकी असली सम्मति न थी किन्तु ईश्वरवादकी एक भ्रमकारक मूर्खता था जिसके अनुकूल जीव एक अमरत्वात्मक और कभी न परिवर्तन होनेवाला पदार्थ है । इसलिये इस जीवको सत्यार्थ विज्ञानवेत्ता इतबारका करार [illegible] नहीं समझते हैं क्योंकि शास्त्रीय सर्वो [illegible] निक शिक्षा पर [illegible] उनका उसका कभी अवसर ही नहीं मिला है।

सर्व धार्मिक सिद्धान्तानुसार, जीव और प्रकृति पुद्गल

दोनों द्रव्य हैं, जिनमें बाज गुण सामान्य हैं परंतु चेतनता नहीं। चेतनता जीवका स्वाभाविक गुण है जो कोई असत्तात्मक द्रव्य नहीं है। यद्यपि यह प्राकृतिक नहीं है अर्थात् प्रकृति (पुद्गल) का बना हुआ नहीं है तथापि जीव और प्रकृति दोनों बाज सूरतोंमें एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं जैसे केवल खयाली शक्तिमें बीमारको अच्छा कर देना। और चेतनताका जड़ी बूटियों और औषधियोंके प्रयोगसे कम व ज्यादा होना इत्यादि। जीव और प्रकृतिके मिलनेसे जीवकी वास्तविक शक्तियां (ज्ञान) मन्द और निरर्थक हो जाती हैं अतः निर्वाणका नितान्त यही भाव है कि जीवकी खराबी पैदा करनेवाली प्रकृतिसे नितान्त पृथकता होजावे। बुरीसे बुरी अवस्थामें प्रकृतिके प्रभावसे जीवकी चेतनताका करीब २ अभाव हो जाता है और वह उस समय केवल स्पर्शके योग्य रह जाती है।

जीवके उपरोक्त वर्णनमें जो जैनधर्मसे लिया गया है, यह प्रत्यक्ष स्वीकार किया गया है कि चेतना प्रकृतिसे प्रभावित होती है इसलिये जो प्रश्न कि—अब धर्म्म और विज्ञानके बीच पैदा होता है वह यह नहीं है कि आया मनुष्य या पशुओंके शरीरमें कोई असत्तात्मक कभी न बदलनेवाला पदार्थ है अथवा नहीं, परंत्त यह है कि आया चेतना शक्ति पुद्गलके परमाणुओंका कर्तव्य है या दूसरे किसी द्रव्यका ? जिसमें पुद्गलका सम्बन्ध तो होता है परन्तु जो वास्तवमें पुद्गल नहीं है।

हम जानते हैं कि यह एक ऐसे व्यक्तिका कहा हुआ है बहुत ठीक २ और मेहनतके साथ विचार करनेका अभ्यास यदि नये पैदा हुये बच्चेके चेतना नहीं होती तो उस जिसको यह पैदा होनेके समय चिल्लाकर जाहिर कर कौन अनुभव करता है । यदि चेतनता वाक्शक्ति होनेके बाद जाहिर होती है तो बच्चेकी प्रीति और वाक्शक्तिके पहले भी उसमें पाई जाती है क्या कारण है? यह युक्ति कि बच्चा बहुत अवधि तक अपना कथन गायब (प्रथमपुरुष) में करता है ? प्रतिज्ञाको ... सीमातक पहुंचा देती है । क्या इसका यह भाव है कि अपने दुख, सुखको भी अमीर गायबमें अनुभव करता है किसी अन्य व्यक्तिकी दशाओंका वृत्त हो ।

हमको उचित है कि हम ऐसी बनावटी सत्यताओं अर्ध सत्यताओंसे धोखा न खायें । बुद्धि, विचार, और ... इन सबका निवास वही है जो दुख सुखके अनुभवका है । ... और अनुभव एक ही पदार्थके दो विविध कार्य हैं जो हमारी अवस्थाओंको ज्ञात कराता है दूसरे शब्दोंमें ... अपने अस्तित्वके ज्ञान करानेवाली शक्तिके दर्शन अनुभव (ज्ञान) भी वैसे ही चेतनताका सूरत है ... बुद्धयनुसार विचार और शब्दाद्वारा प्रगट होने वाले जिनको हम ज्ञान कहते हैं । दो विविध प्रकारकी

तिको गढ़नेका एक कारखाना हो। यह विचारनेकी बात है
कि मनका उत्तम दुर्बलता शाम अर्थात् मुकाबिला करना इन्ति-
ज़ाम व तजवीज केवल ऐसे ही प्राणी कर सकते हैं जो अपनी
पुतलेकीसी प्रवृत्तिको रोक सकते हैं अर्थात् जो इंद्रियोंके
दिन जारी रहनेवाले व्यवहारको रोककर विचारकेलिये समय
निकाल सकते हैं। अतः भेजेकी आवश्यकता केवल उन्हीं
व्यक्तियोंके लिये है जो कार्योंके कारण अर्थात् इच्छाओं पर कम
व ज़्यादा प्रभावित हो गये हों। जैसा साधारणतया ज्ञात है
बहुतसे ऐसे बुद्धिमान स्त्री पुरुष संसारमें पाये जाते हैं जो खास
मौकों पर अपनी बुद्धिको काममें नहीं ला सकते हैं विशेषतया
जब कोई अनिष्ट प्रलोभन उनके सामने मौजूद हो। ऐसी सूरतमें
वह बहुतसे ऐसे कामोंको कर बैठते हैं जिनके लिये वह समय
पाकर विचार करने पर शर्मिंदा होते हैं। मुझे यह ज्ञात होता है
कि इन मौकोंपर बुद्धि और मनकी प्रवृत्तिमें विरोध हो जाता है
और मनकी जीत थोड़ी देरकेलिये हो जाती है। यदि बुद्धिका
कारण भेजेको माना जाय तो ज्ञानशक्तिका इस प्रकार नीचा
देखना कठिनतासे विचारमें आता है जब कि भेजा बराबर
मौजूद हो और बराबर अपना कर्तव्य करता रहे और व्यक्तिको
बनाता रहे। इसके विरुद्ध सब हाल व्यक्त हो जाता है यदि
यह स्वीकार कर लिया जाय। [illegible] अपने साथ वर्तमान
जीवनमें पहलेकी शक्तियां और मन [illegible] और [illegible]

संदेशोंमें दूसरी ओर कितना ही विरोध क्यों न हो लेकिन ई व्यक्ति कभी अपनेको आदमियोंके समूह या कम्पनीको ति नहीं जानता है कि जहां यह पक्षका प्रश्न हो। अनुसंधानसे रेत होता है कि हमारी जानकारीका ज्ञान जिसको हम नता कहते हैं जीवकी एक आन्तरिक ज्ञाता दशा है जिसको नकारीका अनुभव कहना युक्तियुक्त विशेषण होगा, यहां तक मेरा किसी पदार्थका ज्ञान उस पदार्थकी समीपता और सकी जानकारीका अनुभव (feeling) है। इस प्रकार मेरे योंकि ज्ञानमें मेरी अपनी और ज्ञेय पदार्थ दोनोंकी सत्ताका एक ज्ञान शामिल है। जिस किसीने ज्ञान या आत्माको एक र अनुभव समझ पाया है उसको यह बात साफ मालूम होगी कि आत्मा केवल अपनी ही सत्ता या उस सत्ताकी दशाओंके परिवर्तनोंके साथ जो उसमें दूसरोंकी समीपतासे अथवा दूसरोंसे उत्पन्न होती है, ज्ञान कर सकता है। यह कहना ठीक होगा कि मैं दूसरेकी सत्ताको तो ज्ञात कर सकता हूं न्तु अपनीको नहीं। वास्तवमें दूसरेकी सत्ताका ज्ञान स्वयम् के परिवर्तनोंके ज्ञान पर निर्भर है अतः यह कहना कि किसी [illegible] ज्ञाता केवल उसी वस्तुको जानता है, अपनेको नहीं, त है। सत्य यह है कि मेरा किसी दूसरे पदार्थकी सत्ताका [illegible] मुझे मेरे [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] अतः उस [illegible] मुझे [illegible] [illegible]

यह जानेकी होती; न कि किसी ऐसी वस्तुकी ... जान ही नहीं सकता। असलियत यह है कि बिना किसी के हेतुके, किसी वस्तुकी सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती है। इसलिये जिस पदार्थको कभी कोई जान ही नहीं पावेगा उ सत्ता कभी सिद्ध न होगी। इसलिये आपका 'अनजान' (अज्ञ अर्थात्) चाहे उसको छोटे अक्षरोंमें लिखिये या बड़ोंमें, भद्दी फिलासोफीका हव्वा है जिसने कभी बुद्धिवाले लोगोंको भयभीत बना रक्खा है। प्राकृतिक संसारमें भी यह ज्ञा कि पदार्थोंका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है और यह इस प्रक जाने जाते हैं कि उससमय भी जब वह इन्द्रियों द्वारा नहीं जा सकते जैसे ईथर (Ether) जो दृष्टिगत नहीं होता है प अपने गुणोंके कारण जाना जाता है। इसलिये यह कहना कोई वस्तु ऐसी है जो कभी नहीं जानी जायेगी ऐसा कह बराबर है कि वह उस अनन्त समयमें जो भूत भविष्यत् वर्तमान साधारण है कभी किसी दूसरे पदार्थसे किसी प्रकारका सम पैदा नहीं करती। परन्तु यह केवल उन्हीं पदार्थोंके लिये सम है जो संसार अर्थात् सत्ताकी सीमाके बाहर हैं। इस हेतु कि पदार्थका कभी किसी दूसरे पदार्थसे सम्बंध नहीं हुआ और हो सकता है यह अवश्य असत्यात्मक है।

इस प्रकार हम अपने पुराने परिणाम पर वापस आते जिसके अनुसार सब पदार्थ जाने जा सकते हैं और जो जीव

तन शक्तिको अपरिमित साबित करता है । अतः हर एक
विज्ञाता स्वभावतः सर्वज्ञ है ।

यदि यहां तक आपने मेरे व्याख्यानको समझ लिया है तो
आप इस बातको भली प्रकार जान जायेंगे कि प्रकृतिवादियोंका
विचार जो एक प्रकृतिके परमाणुमें कल्पित चेतनाके प्रारम्भिक
अंशसे मानुषिक चेतनताको गढ़ना चाहते हैं कितना झूठ है ।
हम जानते हैं कि बुद्धिकी तीव्रता, मनके धुंधलापन मैल और
सुस्तीके हटानेसे होती है और यह धुंधलापन इत्यादि एकसे
अधिक पदार्थोंके मिलनेसे उत्पन्न होनेवाले संयुक्त पदार्थोंमें ही
सम्भव हो सकते हैं कि जहां एक वस्तु दूसरी वस्तुके गुणोंको
गन्दा और खराब कर देती है । परन्तु प्राकृतिक परमाणुमें मानी
हुई चेतनाके साथ कोई धुंधला करनेवाला कारण लगा नहीं
हो सकता है क्योंकि परमाणु एक असंयुक्त अखण्ड पदार्थ
है । इसलिये यदि चेतनाको परमाणुका गुण माना जाय तो
परमाणुमें रहनेवाली आत्माको तीव्र बुद्धिवाला होना चाहिये
यह युक्ति प्राकृतिक परमाणुओंकी चेतनाको नितांत झूठा साबित
करती है । मैझेकी चेतनताका ख्याल भी जीवकी समझ और
ज्ञानकी शक्ति पर लिहाज करते हुये इससे अच्छा नहीं ठहरता
यदि कोई पुरुष इस बात पर जरा ठहर कर विचार करेगा कि
ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान अन्वेषण वर्गीकरण किस्म बंदी
मुकाबला तुलना अनुमान अथवा विचार इत्यादि इन्द्रि और

का भाव क्या है तो मैं आशा करता हूं कि यह
(Bowne) की निम्नलिखित युक्तियुक्त सम्मति
त होनेसे इनकार न करेगा (Bowne's
०७-४१०)—

मनको एक मोमकी तख्तीकी भांति मान लेनेसे,
दार्थोंको उस पर अङ्कित होते हुये खयाल
सामान्यतः प्रतीत होता है कि हमको बड़ी
ाती है। किन्तु उसी समय तक जब तक कि हम यह
हीं करते हैं कि यह तख्ती कहां है और उस
र्यों कर अङ्कित होते हैं और यदि ऐसा हो भी तो
ान क्यों कर प्राप्त होता है ? अनुभव और
ात्कालिक पूर्वज भेजेकी नाडियोंके परिवर्तन हैं।
जगतका जो कुछ हाल हमें ज्ञात है वह सब इन
तबदीलियोंसे है परन्तु यह तबदीलियां, उन
नका कारण माने गये हैं नितान्त दूसरे ही भांतिकी हैं।
यदि हम मनको प्रकाशमें और बाह्य पदार्थों पर
सोचें तो खयालको कुछ संतोष सकेगा। परन्तु
हम जानते हैं कि मन खोपड़ीकी अंधेरी कोठरीमें
अगम्यसे साक्षात् करता है और तिस पर भी पदार्थोंके पास
नहीं आता किन्तु कुछ नाडियोंकी तबदीलियोंके समीप
आता है जिनसे मनासे विशेषत वह नितान्त अनभिज्ञ है

तो यह विदित है कि बाह्य पदार्थ बहुत दूर हैं। चित्रों और मानसिक अङ्कों इत्यादिका कथन यहां सब निरर्थक हो जाता है। क्योंकि जिन पदार्थोंमें चित्रोंका प्रश्न उठा करता है उनकी सत्ता ही यहां असम्भव है। यह भी साफ नहीं है कि हम अंधकारमेंसे किसी भांति प्रकाश और सत्य संसारमें पुनः प्रवेश कर सकेंगे। हम प्राकृतिक विज्ञान और इन्द्रियों पर पूरा २ भरोसा रख कर अन्वेषणमें संलग्न होते हैं और तत्काल बाह्य पदार्थसे एक नसोंके चक्करमें पड़ जाते हैं कि जहां पर बाहरी पदार्थके स्थान पर नाड़ियोंके परिवर्तन रह जाते हैं जो अपनी सत्ताके अतिरिक्त और किसी पदार्थके सदृश नहीं है। अन्ततः हम अपने तई खोपड़ीकी अंधेरी कोठरीमें पाते हैं। अब बाह्य पदार्थ नितान्त अदृष्ट हो गया और ज्ञान अभी प्राप्त नहीं हुआ है। कट्टरसे कट्टर प्रकृतिवादियोंके खयालसे भी बाह्य पदार्थोंकी जानकारीका यन्त्र केवल नाडियोंका परिवर्तन है। परन्तु इन परिवर्तनोंको बाहरी संसारके ज्ञान रूपमें बदल देनेकेलिये यह आवश्यक है कि हम एक अनुवादक नियत करें जो इन परिवर्तनोंके भावको समझ सके। परन्तु वह अनुवादक भी स्वयम् ऐसा हो जो संसारका भाव अपनेमें रखता हो। और यह परिवर्तन अथवा चिन्ह वास्तवमें एक प्रकारकी क्रिया है जो जीवके आन्तरिक ज्ञानका प्रकाश करती है। चूंकि सर्व

अवधानके वर्तमान समयके साथ न दौड़ने और उसके व्यतीत होते हुये समयपर क्षण भर रुक जाने या भूत कालकी ओर आकर्षित होनेसे प्राप्त होती है। अब यह जानना उचित है कि स्मरण शक्ति बनी बनाई तसवीरों या फोटूके चित्रोंकी भांति नहीं है क्योंकि न तो भेजे हीमें और न शरीरके किसी और लहर्में किसी स्थान पर कोई तसवीरखाना या फोटूकी एलबम (चित्रोंके रखनेकी किताब) नहीं है वह स्वाभाविक शक्तियोंकी भांति है जिनसे ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष पुनः नवीन बन सकता है इस लिये ऐन्द्रिय प्रत्यक्षके गुणों (चिन्हों) से ही स्मरणके विशेष होना भी पता चल सकता है। किन्तु ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष तो वह आन्तरिक अनुभव है जो वाह्य उत्तेजकके दृष्टाकी चेतना पर पड़नेवाले प्रभावसे उत्पन्न होता है। इसलिये स्मरण भी पूर्व अनुभूत ऐन्द्रिय प्रत्यक्षका पुनः निर्माण-कर्ता है, यद्यपि वह इस समय आन्तरिक उत्तेजन क्रियासे उत्पन्न होता है। शरीरके वह भाग जो ऐन्द्रिय दर्शनमें क्रियावान होते हैं नाड़ियोंके जाल या भेजेके दर्शनसम्बन्धी स्थान हैं जहां कि अनुभव शक्ति विशेषतया तीव्र होती है। भेजेके इन दर्शनसम्बन्धी स्थानोंके समभकर सम्बन्धमें दो प्रकारके कार्य हैं।

१.- ऐन्द्रिय ज्ञानमें वह वाह्य उत्तेजक क्रियाको आत्मा तक पहुंचाते हैं।

२- स्मरणमें वह आन्तरिक मानस्य क्रियाको ज्ञानेन्द्रिय

तब मन एक इन्द्रियसे जुदा होता है तो दूसरी इन्द्रियोंका
त्तेजक आवेग (Sensory stimulus) उस तक नहीं
ह पाता है। परन्तु जब यह खिंचाव या तनाव ढीला पड़
ा है तो जीवन क्रियाके बहावका समय अथवा ताल बदल
ा है और मन्द २ क्रियाएं व थकेपे (अन्तर-Rest)
स्थित हो जाते हैं यह क्रियाएं और आन्दोलन भेजेके दर्शन-
बंधी स्थानोंकी सहायतासे स्मरणको पुनर्जीवित करते हैं जो
ृतत्त्वभाषामें Reproduction (शब्दार्थ, फिर निर्माण करना)
ाता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहना उचित होगा कि स्मरणमें
ाजक और आन्दोलन क्रियाएं मनके अन्दरसे आती हैं
र ऐन्द्रिय उत्तेजनें बाह्य पदार्थोंसे। दोनों अवस्थाओंमें भेजेके
ान केवल ऐन्द्रिय दर्शनका वस्ता संचरित करते हैं जैसा कि
हिले कहा गया है। अतः स्मरणके रोग दो प्रकारके हो
कते हैं। या तो वह अवधान (ध्यान) के अमुक २ आन्दो-
नों अथवा क्रियाओंको स्थापित करनेमें असमर्थ रहनेसे
पन्न होंगे या भेजेके घाव इन क्रियाओंको दर्शनरूपी वस्त्रोंसे
वित रक्खेंगे। परन्तु इसका भाव यह नहीं है कि स्मरणका
कृति (पुद्गल) से नितान्त कोई सम्बंध ही नहीं है। यह
चार कि स्मरण और प्रकृतिमें कोई सम्बंध नहीं है इतना ही
थ्या होगा जितना यह कहना कि स्मरण केवल प्राकृतिक
[illegible] है [illegible] स्मरणके आन्तरिक

...ता होनेसे हमारी स्वतंत्रताका अनुभव बढ़ता जाता है
...र हर्ष अधिक अधिक होता है। इसलिये ऐसा कहनेमें कोई
...देह नहीं है कि जितना स्वतंत्रताका अनुभव ज्यादा होगा
...नी ही आनन्दकी लहर अधिक बढ़ेगी। यहां तक कि सब
...ार के बंधनों, भावों और इरादोंसे पूरी स्वतंत्रताका प्राप्त
...ना सबसे अधिक कभी कम न होनेवाले और कभी न
...जानेवाले समाधिकी आत्मिक सुखका कारण होगी। अतः
... यह परिणाम निकालते हैं कि जीव स्वयं आनन्द और
...स्वादका सोता, निवास व निवासस्थान है और उसके
...नन्दका स्रोत कभी नहीं सूख सकता है। इसका कारण यह है
... कि यह हर्ष जो हमारे अंदरसे पैदा होता है खुद हमारी ही
...त्माका गुण है। क्योंकि आत्मा जैसे अखंड और असंयुक्त
...व्यके सम्बंधमें 'अंदर' का भाव और कुछ हो ही नहीं सकता है।
...र चूंकि द्रव्य और उसके स्वाभाविक गुण या विशेषण नित्य
...ते हैं इसलिये यह असम्भव है कि यह आनन्द जो आत्माका
...गुण है हमेशा सम्पूर्णतया अपने रोकनेवाले कारणोंके नाश
...होकर प्राप्त होनेके पश्चात् कभी कम हो सके।

पर हम इस बातको समझ सके हैं कि इच्छायें और
[illegible] होकर [illegible] इनके [illegible] मनकी शांति और
[illegible] नष्ट हो जाते हैं, क्यों [illegible] है [illegible]
और उसके निमित्त यह कहना है कि यह आत्मासे बाहर [illegible]

योंसे उत्पन्न होते हैं और इस कारण हमारे जीवनकी दशायें हैं। यदि इसके विपरीत होता अर्थात् दुःख, हमारी सत्ताके गुण होते तो यह हमारी और कषायोंके हलका और मंद पड़जाने पर उत्पन्न होते क्योंकि जो पदार्थ किसी वस्तुका गुण है वह स्वयं विना कारणके ही अपने रोकनेवाले कारणोंके हटजाने पर हो जाता है। रंज और कष्ट दोनों वाह्य कारणोंसे, निम्नलिखित दो प्रकारके हैं, पैदा होते हैं।

(१) अनिष्टसंयोग अर्थात् मिलाप ऐसी वस्तुसे जो ग्राही नहीं है।

(२) इष्टवियोग अर्थात् पृथकता ऐसे पदार्थसे जो ग्राही और रोचक है।

दुःख और रंज किसी दशामें उस समय नहीं पैदा होते हम अपनी सत्तामें स्थिर हों अर्थात् इन कारणोंमेंसे दूसरेके निमित्तके विना नहीं उत्पन्न होते। वास्तवमें कि शारीरिक दुःखका सम्बन्ध है वह प्राकृतिक प्रकारकी वस्तुओं व प्राकृतिक तत्वोंके वाहमी (आपसके कीमियाई कर्म्मका जो शरीरमें होता रहता है प्रभाव है, न जीवके अन्दरमें कोई स्वयं उत्पन्न होनेवाला पदार्थ।

उपरान्त व्याख्यासे हम यह कहनेके अधिकारी हैं कि

आनंदका कोष है जिसको वह बाह्य पदार्थोंसे प्राप्त करनेका
क प्रयत्न करता है।

फिर क्या कारण है कि जीव अपने इस स्वाभाविक आनं-
ा अनुभव नहीं कर सकता है? इस जटिल प्रश्नका उत्तर
है कि हमारी त्रुटियों और मूढ़ताके कारणसे जीवात्माके
भाविक गुण कार्यहीन हो गये हैं।

जिस हद तक कि इन त्रुटियों, मूढ़ता या कषायमयकी
में हानि होती है उस हदतक जीवके स्वाभाविक गुण प्रकट
हैं। वास्तवमें जीवात्मा पूर्णानन्द और सर्वज्ञताका अनुभव
गा जब कि वह शक्तियां जो इससमय इन गुणोंको रोके हुये
नितान्त नष्ट हो जावेंगी। और अमरत्व भी जीवके उन
रियों पर विजयी होने का पारितोषिक होगा।

जीवको सर्वज्ञ, सुख और अमरत्वका स्वामी कहना उसको
यं खुदा या ईश्वर (ब्रह्म) कहना है क्योंकि ईश्वरकी सत्तामें
ो बड़े गुण यही पाये गये हैं इसले पवित्र इंजीलके इस
ाक्यका कि "वह पत्थर जिसको मेमारोंने रद्दी समझकर
क दिया निखरका सरताज हुआ है" (देखो जबूर ११८ आयत
२ व मत्तीकी इंजिल बाब २१ आयत ४२) पूरा समर्थन
ाता है।

वास्तवमें वही पत्थर आत्मा जिसको मेमारों (प्राकृतिक
ज्ञान बनानेवालों) ने फेंक दिया था सब विज्ञानका ताज साबित

तब यह प्रकृतिके लगायका प्रभाव है अवस्थाओंका जिम्मेवार है जो एक पवित्र आत्मामें नहीं क्योंकि विविध द्रव्यों या तत्वोंके आपसमें मिल कर आनेका परिणाम उनके असली गुणोंका सीमित हो एव जाना ही हुआ करता है जैसे हाइड्रोजेन जेन जो नैसर्गिक दो प्रकारकी वायु है परन्तु जब एक हो जाती है तो इनके स्वाभाविक गुण में परिवर्तित हो जाते हैं। परंतु इस प्रकार नहीं हो सकते हैं। पदार्थोंके पृथक् होने पर यह पुनः पूरे समर्थताको प्राप्त हो जाते हैं (देखो इंडियन रिव्यू पत्र १५५)। गौर करनेसे ज्ञात होता है कि अपवित्र अपने ज्ञान, दर्शन व आनन्दके असीमित गुणोंका पूरा नहीं उठा सकता है जिससे प्रकट है कि इन गुणोंको घाली शक्तियां उसके साथ लगी हुई हैं। इस प्रकार किसकी शक्तियोंका पता चलता है। अर्थात्

१-यह शक्ति जो ज्ञानको रोकती है (यह कहलाती है)।

२-यह जो दर्शनको रोकती है (दर्शनावरणीय) और

३-यह शक्तियां जिनके कारण वास्तविक आनंदके सांसारिक दुख सुखका अनुभव हुआ करता है (वेदनीय)

इनके अतिरिक्त विचार करने पर एक और शक्तिका

जता है जिसके प्रभावसे सच्चा धर्म्म (अर्थात् साइन्टिफिक यार्थ सत्य) हृदयग्राही नहीं हो सकता। यह दो प्रकारकी है। क तो सत्यको हमें स्वीकार ही नहीं करने देती और दूसरी वह ो सत्यके स्वीकार होने पर भी हमें उस पर कर्तव्यपरायण ानेसे रोकती है। इनमेंसे प्रथम प्रकारकी शक्तियोंका भाव पक्ष- ात, हठधर्मी, मिथ्यात्व और उन तमाम बुरेसे बुरे (अनंतानुबंधी) षायों (क्रोध मान माया लोभ) से है जिनकी तीव्रता व न्मत्तताके कारण बुद्धिको, जो एक ही यन्त्र सत्यान्वेषणका है, त्यताके खोजका अवसर ही नहीं प्राप्त होता है। और दूसरे कारकी शक्तियोंमें अनंतानुबंधी प्रकारके अतिरिक्त और अन्य कारके बुरे कषाय (क्रोध मान माया लोभ) सम्मिलित हैं जो ैर्य्य और वीर्यके नाश करनेवाले हैं और उन पदार्थोंके ग्रहण रनेमें बाधक होते हैं जिनको हम लाभकारक और उत्तम जानते और कुछ छोटे २ दोष (नोकषाय) जैसे हँसी रति इत्यादि शारीरिक आदतें व कामनाएं भी जो मनको काबूमें लानेमें ाधक होते हैं। यह सब मोहनीय कर्म्म कहलाते हैं इनके दो कार हैं।

१—दर्शनमोहनीय, जिनकी उपस्थितिमें सत्य धर्म (दर्शन) प्राप्त नहीं हो सकता है। और

२—चारित्रमोहनीय, जो सत्य धर्मको तो प्राप्त हो जाने देते हैं किंतु उस पर कर्तव्य परायण नहीं होने देते हैं।

७-ब्रह्मचर्य अर्थात् अपनी स्त्रीसे भी पृथक्ता करना

८-आरम्भ त्याग अर्थात् सब प्रकारके धन्धों और

व्योपारसे सम्बन्ध त्यागना ।

९-धनका छोड़ना अर्थात् अपनी सब सांसारिक

स्त्री पुत्रों इत्यादिको दे डालना ।

१०-सांसारिक मामलातमें सम्मति देना भी बंद करना

(अनुमतित्याग) ।

११-भोजनके निमित्त अपने ऊपर और भी कैद

अर्थात् केवल एक बार भोजन करना और वह भी

आदरके साथ बिना न्योता दिये हुये और खानेके समय

और कपड़ोंमें केवल लंगोटीका रखना ।

ग्यारहवें प्रतिमाके पूर्ण होनेपर मुमुक्षु सन्यास

पहुंच जाता है और घरबाररहित तपस्वी साधु हो

यह दर्जे कर्म व गुणोंके आरम्भ तक पूर्ण होते हैं

३४ वर्गोंकी आयुके दर्जेमें (आत्म ध्यानके समयके लिये

[illegible]

इस्मार्गमें कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसको मनुष्य नहीं कर
है यदि वह एक बार अपनी हिम्मत उसके करनेकेलिये
े। यदि पूर्ण कृतकृत्यता हमको तत्काल नहीं भी मिले तो
न्तु हो जानेसे परिश्रम निरर्थक नहीं जाता है। ज्ञान और
सका उत्तम फल जीवके साथ एक जन्मसे दूसरे जन्म
र कार्माण शरीरके उत्तम प्रकारके परिवर्तनोंके रूपमें जाता
और आगामी जीवनके शरीर संबन्धोंके निर्माणमें पूरा
लेता है। तब मनका उत्साह और प्रसन्नता ही आवश्यक
हैं, सत्य ज्ञानके प्राप्त होनेपर कृतकृत्यताके लिये है। यदि
ी कुशल कानूनवेत्ताको जब कि वह गोदके बच्चेकी दशामें
इन पुस्तकोंकी संख्या, जिनको उसे बादमें पढ़ना होगा, बताई
ो और उसको उसपर विचार करनेका समय दिया जाता
निश्चय है कि वह भयसे मृत्युको प्राप्त होगया होता। परन्तु
र मध्य बहुतसे ऐसे पुरुष हैं जिन्होंने केवल कानूनहीमें नहीं
(और विषयों और शिल्पोंमें भी ख्याति प्राप्त की है। और
भी नहीं है कि मोक्षके पथिकके मार्गमें केवल कष्ट और
ही हों। यह सत्य है कि कुदरतमें गुलाबका फूल बिना
के नहीं मिलता है, परन्तु यह भी इतना ही सत्य है कि कोई
ाली कांटा भी कुदरतमें ऐसा नहीं है जो फूल तक हमको
पहुंचनेदेगा यदि हमको उसके अन्वेषणार्थ। [illegible] आवे और
उसको तलाशमें कर्तव्यपरायण [illegible]। यदि आप [illegible]

तो कभी नहीं विस्मरण करना चाहिये कि सत्य आत्मज्ञान चरित्रका मूल अर्थात् नित्य जीवनके सदैव हरे रहनेवाले का असली बीज सम्यग्दर्शन है, जिसके निमित्त रत्नकरंड-श्रावकाचारमें जो एक बहुत प्राचीन शास्त्र है ऐसा कहा है:—

"तीनों लोक और तीनों युगोंमें जीवोंका सम्यग्दर्शनके बराबर कल्याणकारी कोई दूसरा नहीं है और न मिथ्यात्वके सदृश कोई अकल्याणकारी है। शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव, कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, कीर्ति, कुल, वृद्धि, विजय और विभवके स्वामी, कुलवान, धर्म अर्थ काम मोक्षके साधक और मनुष्योंमें शिरोमणि होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गोंमें तीर्थंकर भगवानके भक्त होते हैं, और आठ प्रकारकी ऋद्धियोंसे तुष्टायमान और अतिशय शोभायुक्त होकर देवों और देवांगनाओंकी सभामें बहुत समय तक आनंद भोगते हैं। निर्मल सम्यग्दृष्टि पुरुष सम्यक्त्वके प्रभावसे चक्रवर्ती राजा होते हैं जिनके चरणोंपर सब राजा मस्तक झुकाते हैं, और जो नौ निधियों चौदह रत्नों और छै खंडोंके स्वामी होते हैं। सम्यक्दर्शन ही है शरण जिनकी ऐसे जीव जरा-रहित, रोगरहित, क्षयरहित, बाधारहित, शोक भय शंकारहित परम प्रकर्षताको प्राप्त हुआ है सुख और ज्ञानका विभव जिसमें ऐसे और कर्ममलरहित मोक्ष पदको प्राप्त होते हैं। जिनइष्टी है भान जिसके ऐसा भव्य मोक्षगामी)

असहमत-

जीव अपरिमित देवेंद्र समूहकी महिमाको और ...
मस्तकसे पूजनीय चक्रवर्तीके चक्रको तथा नीचा ...
तमाम लोक जिसने ऐसे तीर्थंकर पदको पाकर ...
पाता है।"

अतः केवल यह कहना शेष रह गया है कि जो ...
आजके व्याख्यानमें हमने निकाले हैं यह सब जैनि...
सम्मिलित हैं जो विज्ञानसे नितांत सहमत पाया जाता है।
बहुतसे परिणामोंको हम अन्य धर्मोंमें भी पावेंगे ...
अन्वेषणका समय आवेगा ।
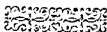
चतुर्थ व्याख्यान।

दार्शनिक सिद्धांत।

आजके व्याख्यानका विषय दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphy-sics) है। इसमें कुछ संशय है कि इस शब्दका यथार्थ अर्थ क्या! परन्तु प्रारम्भमें यह अरस्तुके सैद्धान्तिक विषयमें व्यवहृत किया गया था जो उसकी लिखित पुस्तकोंके संग्रहमें पदार्थ ज्ञान (Physics) की पुस्तकके पश्चात् व्यवस्थित था। परन्तु इस शब्दका भाव कुछ भी क्यों न हो मेरे विचारमें, हम बिना किसी संशयके उसका संबंध उस ज्ञानसे कर सकते हैं जो पदार्थ ज्ञान (Physics) से उपरान्त है। अस्तु। फिजिक्स तो सत्तात्मक (विशेष) पदार्थोंके ज्ञान से सम्बन्ध रखता है और मेटा-फिजिक्स उनके भेद और संबंध स्थापित करता है एवं अन्ततः उनको एक व्यवस्थित योग्य ज्ञानके तौर पर तरतीब देता है। जैसा हम पहले कह चुके हैं सिद्धान्त और विज्ञानका जोड़ा है अर्थात् उनका आपसका [illegible] लोगोंका सहायक है। कारण कि विज्ञान [illegible] को [illegible] समस्याओंसे बचनेके हेतु यह आवश्यक है कि वह [illegible] को पूर्ण रूपमें समान करनेका प्रयत्न करे [illegible] सिद्धान्तका चाहिये कि

यह प्रकृतिके नियमोंका रंचमात्र भी साथ न छोड़े ताकि हम
विरुद्धतासे जो विचारावतरण और यथार्थ प्राकृतिक विचारों
मध्य पाई जाती है बच सकें। अतः मेटाफिजिक्स वह ज्ञान
जो अनुभूत घटनाओं पर विचार करनेकी कार्रवाई या
फल है जो अपने अन्तिम स्वरूपमें एक सम्पूर्णरूपेण
ज्ञान है जो समस्त पदार्थोंका बोध करानेको समर्थ हो
इस कारणवश उच्चतम उद्देशके हेतु व्यवहृत किया जा सके।
यह व्याख्या हमारे अर्थमें अत्यन्तावश्यक है कारण कि
हम समय हर प्रकारके मानसिक विचारावतरणसे कोई
नहीं है। हमको सुतरां केवल उस विचारसे गरज है जिसका
सम्बन्ध किसी न किसी प्रकारसे धर्म हो। हमारा कोई
मानुषिक विचारावलीके इतिहास लिखने अथवा धर्मके
में विविध देशों और भाषाओंके विद्वानोंकी सम्मतियोंको
चित करनेसे भी नहीं है। और न हमें इतना अवकाश ही
है। इस प्रकारका प्रयत्न केवल हमारी वर्तमानकी आवश्यकता
ओंसे असंबंधित ही नहीं होगा वल्कि उसके लिए इतना
समय और श्रम होगा जो इस व्याख्यानके विषय और व्याख्या
ताकी योग्यताके बाहर है।

अत हम अपनी खोजको व्यावहारिक ...
समस्याओं तक मर्यादित रक्खेंगे अर्थात उन दर्शनोंतक
... समस्त ... है। और उनमेंसे भी हम किसी

कि वेदांती लोग उसका मन्तव्य लगाते हैं। आत्माको ... होनेका अनुभव होने ही मुक्ति तुरन्त प्राप्त होती है। वेदान्तका सिद्धान्त "यह तू है" है न कि "यह तू हो ... प्रम ज्ञानकी प्राप्तिके साथ ही साथ जीवात्मा ... जाता है (Deussen)।

वेदान्तकी मुख्य शिक्षा निम्नप्रकार है—

(क) संसारका मायारूप होना।

(ख) केवल एक पदार्थ या आत्माका सत्य ...

(ग) ज्ञानद्वारा मुक्तिका प्राप्त होना।

इनमेंसे प्रथम विषयके बारेमें यह लिखना उचित होता है कि अनुमान या न्याय (Logic) में कुछ ... नियम मानने पड़ते हैं और हमारे लिये दार्शनिक ... प्रयत्न करना अब तक कि हम उनको स्वीकार न करें, ... यह सिद्धांत एस० एन० बनर्जीद्वारा रचित न्यायकी ... सी पुस्तिकामें जिसका नाम "ए हैंड बुक ऑफ ... लोजिक" है, योग्यताके साथ वर्णित हैं, और इसप्रकार ...

(१) यह कि हमारे मनसे पृथक् एक पौद्गलिक (... ... नस र है।

... कि हमारा मन पदार्थोंका ठीक २ ... मन ... ही है जैसे वह ... है

: रचयिताके यथार्थ उद्देश्य तक नहीं पहुंच पाया ! आपको
दर्शनके स्थापक कपिल मुनिके बताए हुए तत्त्वोंका स्मरण
। तो भी आपकी सुगमताके लिए मैं उनको यहांपर पुनः
देता हूं:—

र (१) प्रकृति

क्ष (२) अव्यक्त

महत (३)

अहंकार (४)

सत्वके साथ — तमसके साथ

ज्ञानेन्द्रिय (६–१०) } मन (५) { पञ्च कर्मेन्द्रिय (११–१५)

शब्द (१६) स्पर्श (१७) रूप (१८) रस (१९) गंध (२०)

आकाश (ईथर) (२१) वायु (२२) अग्नि (२३) जल (२४) पृथ्वी (२५)

आपके सामने यह नकशा उपस्थित है जिसमें तत्त्वों और
उनके स्वरूपोंका क्रम लिखित है जो महत (३) से प्रारंभ होता
, क्योंकि पहिले दो तत्त्व अनादि हैं। कपिल मुनिके मतानुसार

(१) बुद्धिका प्रकाश होना।

(२) उस बुद्धिमें अहंकार अर्थात् मैं के संकल्पका उठना।

(३) मैं अर्थात् मन, व ज्ञान व कर्म इन्द्रियोंकी वृत्तियों और गुणोंका विकसित होना।

(४) इन्द्रियोंका उत्तेजित होना अर्थात् ऐन्द्रिय दर्शन या वेदना रस गंध आदि।

(५) ऐन्द्रिय वेदनाओंकी सामग्री रस गंध इत्यादिके सूक्ष्म तन्मात्राओंका पंच स्थूल भूतरूप जिनके पदार्थ बने हुए हैं परिवर्तित होकर बाहरकी ओर डाले जाना।

यदि आप मायावादियोंके इस मतको अपनी दृष्टिमें रखके यह संसार देखनेवालेके मनमें है और उसके पदार्थ ऐन्द्रिय वेदना ही हैं जिनको हम मनद्वारा जानते हैं तो आपको कपिलका सिद्धान्त समझनेमें कोई विकट ज्ञान नहीं होगी। हम इनके तत्वोंकी अवस्थाओंकी तुलना साथसाथ लिखकर उससे करें जिससे यह विदित होता है कि कपिलमुनिने सोकर उठते हुए मनुष्यको संसारका ज्ञान होना माना है:—

सोकर उठता हुआ मन	संसारका उद्भव
(१) जाग्रत और सुप्तावस्थाका अन्धकार प्रकट होना।	(१) संसारकी सृष्टि और नाशका अन्धकार प्रकट होना।
(२) सुप्तावस्थामें चेतनका नाश नहीं होता है सुतरां यह कोई	(२) प्रलयमें पुरुषका नाश नहीं होता है बल्कि संसारका

असहमत-

दर्शनीय पदार्थ नहीं होता है।	कौतुक बन्द हो जाता है। अतः कोई दर्शनीय पदा नहीं रहता है।
(३) जागने पर पहिले पहिल बुद्धिका प्रकाश होता है	(३) संसार क्रममें सर्व प्र महत (बुद्धि), प्रकाश होती है।
(४) बुद्धिसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है।	(४) फिर महत् अहंका रूपान्तरित हो जाती है
(५) अहंकारसे 'मैं' का कार्या-लय अर्थात् मन व ज्ञान व कर्म इन्द्रियां विकसित होती हैं।	(५) अहंकारसे मन व प ज्ञानेन्द्रियां व पांच कर्मेन्द्रि अर्थात् हाथ पैर आदि बने
(६) तब ऐन्द्रिय दर्शन (चेत-नताका भान) होता है।	(६) अहंकार इन्द्रिय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, र गंधमें परवर्तित हो जाता
(७) ऐन्द्रिय दर्शनकी सामग्री बाहिरी मूर्तिक संसाररूपमें परि-वर्तित हो जाती है।	(७) इन्द्रियज्ञान श गंध आदिके सूक्ष्मतत्व ओंका पंच स्थूल भूत अ आकाश, वायु, अग्नि, और पृथ्वीमें परिवर्त आता है जिनका यह सं बना है।

ना असंभव हो तो उतना ही असंभव उसको असत्का
ादित करना होगा। और यदि स्वप्न अथवा भ्रमका दृष्टांत
या जावे जो मृगतृष्णा अथवा नटविद्या (इन्द्रजाल) में
प्त हुआ हो तो यह मानना पड़ेगा कि स्मरण शक्तिके अनु-
र स्वप्न भी पहिलेकी देखी हुई वस्तुओंके दृश्यके तर्क हैं
र भ्रममें भी हम किसी वस्तुका भ्रम करते हैं। यहां तक कि
ात्मिक ज्ञान सत्यज्ञानसे सदैव दूर हो सक्ता है" (सि०
० फि० पृ० ४२९)।

गौतमका वचन है कि ज्ञानका संबंध मन और इंद्रियोंसे
ीं है सुतरां आत्मासे है। वह आवागमनके सिद्धांतको
ीकार करता है। और राग, द्वेष एवं मूढ़ताको प्रधान दोष
मझता है। जिनमेंसे मूढ़ता निकृष्ट है। पुण्य पापके अभावमें
रीरसे जीव पृथक् हो सक्ता है। गौतमके सिद्धांतमें ईश्वरको
ावश्यता गौणरूपमें है। उसकी सत्ताकी आवश्यका केवल
ावागमनमें पड़े हुए अनंत जीवोंको उनके कर्म्मोंका फल देनेके
िए है।

न्यायके तत्त्वोंमें मानके यथार्थ तत्त्व, जिनको हम धर्मकी
ैज्ञानिक खोजमें स्थापित कर चुके हैं, नहीं पाए जाते हैं और
ो उनमें मोक्षके स्वरूपका ही वर्णन है जो यथार्थ उद्देश्य है।

कणादका वैशेषिक दर्शन भी विशेषतया न्यायकी बहिन
है। उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है जो अन्य स्थान

चारसे यह सिद्धान्त माननीय है यद्यपि उसके स्वीकार करनेमें
ह हद तक चेतावनी अवश्य करनी पड़ेगी। इसके विपरीत यह
ह और बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारतमें महमूद गजनवीके
ह्मलोंके और पश्चात्के अन्य मुसलमान बादशाहोंके आनेके
मयके लगभग वर्तमान कालकी निस्बत बहुत ज्यादा योगी
ौर महात्मा पाए जाते थे। मैं इसको मान लेता हूं कि प्रारम्भिक
ुसलमान आक्रमणकारियोंसे हिन्दुओंको हृदयसे ग्लानि थी। और
दि योगमें कोई विघ्न उनके विध्वंस करनेका होता तो मुस-
लमानोंकी सफाई करदी गई होती। परन्तु योग उससमय हर
पसे ध्वंसहीन हुआ! उसके कुछ शताब्दियोंके पश्चात् जब सि
ी और सूअर दोनोंका मांस खानेवाले ईसाई लोग भारतवर्षमें
आए तब भी योगविद्या पतनहीन रही! और इससमय अकेले
ही नहीं वरिक मुसलमान दरवेशोंको उपासनाके मार्गमें! मुझे
इसका अनुभव बहुत कम है परन्तु जो कुछ मैंने स्वयं
देखा है और इसके संबंधमें पढ़ा है उससे मैं इस निर्णय पर
पहुंचा हूं कि भूतकालीन प्रथाओंके एक विशाल विभागको
'मनरूबः' [illegible] करनेके लिये कोई विशेष कारण
प्रतीत नहीं होते हैं। परन्तु मैं इन शब्दोंके स्थानपर अन्य शब्द
व्यवहार भी नहीं करना चाहता हूं [illegible] अद्भुत
[illegible] नहीं है
[illegible]

चंचलताको रोकनेका उपाय है। और बहुतमें
इसका रंचमात्र भी उल्लेख नहीं है।
विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।
समाधि अंतरंगसे संबंधित है और इच्छाओं एवं
निरोध करनेसे प्राप्त होती है। पतञ्जलि मुनिने
भी वर्णन नहीं किया है जिससे शुद्ध
है। जिन महाशयोंको इस संबंधमें जाननेकी इच्छा हो
'की ओफ नोलेज' नामक पुस्तकके १३ वें अध्यायका
करना योग्य है कि जहांपर सम्पूर्ण विषय पूर्णरूपेण
अब मेरे पास इतना अवसर नहीं है कि मैं यहांपर
विषयका विस्तारसे वर्णन कर सकूं।

अब मैं 'योगदर्शन' के विशेष चित्ताकर्षक विषयों
करता हूं जिसका संबंध अद्भुत शक्तियोंकी प्राप्तिसे
विचार है कि आपमेंसे कुछ महाशयोंको इस बातके
उत्कट इच्छा होगी कि देखें इस विषयपर खोज
निर्णय क्या होता है ? परन्तु, महाशयो ! मैं कानूनका
और कानूनके ज्ञाताओंका चित्त स्वभावतः सुनी सुनाई
मानलेनेके विपरीत होता है। तब भी 'विभिन्न धर्म
सिद्धान्तोंकी कथाओंका एक विशाल ढेर है जो निःसं
बातको साबित करता है कि कुछ अद्भुत शक्तियां,
शीलता व तपस्याका जीवन व्यतीत करनेसे प्राप्त होती

स बातको समझानेके लिए जैमिनि यह मानता है कि
र्म फल अर्थात् कोई अदृष्ट वस्तु या कर्मसे एक प्रकारकी
श्चात् अवस्था अथवा फलकी एक अदृष्ट पूर्व अवस्था
। जो एक सनातनी अपूर्व अवस्था है और जो शुभ कर्मोंसे
त्पन्न रहनेवाले फलको व्यक्त करती है और यह यह
ी कहता है कि यदि हम परमेश्वरको स्वयं पुण्य पापके
कूल सुख दुःख देनेवाला मान भी लेवें तो हमको उसे विशेष
र अत्याचार और पक्षपातका दोषी ठहराना पड़ेगा।
अस्तुः यह विशेष योग्य प्रतीत होता है कि यह मान लिया
जावे कि शुभ या अशुभ सब कर्म अपना अपना फल देते
हैं अथवा अन्य शब्दोंमें संसारके नैतिक प्रबंधके लिए किसी
ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है (सि० नि० कि० पृ० २११)।
मेक्समूलर कर्मोंकी स्वयं फलदायक व्यवस्था पर विवेचन
ते हुए लिखते हैं कि:—

"— जैमिनि ईश्वरको संसारमें अन्यायका उत्तरदायी
होने नहीं ठहराता है और इसलिए प्रत्येक वस्तुको कारण
कार्यके सिद्धांत पर अवलम्बित करता है और संसारकी
[illegible] अवस्थाओंको शुभ और अशुभ कर्मोंके फलका
[illegible]
[illegible]
[illegible]

जब कि केवल बहुतसे वैदिक देवताओंके परमेश्वरका विश्वास भी बहुत समय पहिले नहीं हो चुका था बल्कि उस ईश्वरके स्थानपर उच्चतम शक्ति अथवा परमात्मपने को मानने कोई नाम सिवाय ब्रह्म या सत्‌के अथवा "मैं हूं" नहीं था" (सि॰ सि॰ फि॰ पत्र ४४१-४५०)

हमको मेक्समूलर साहब यह भी बतलाते हैं— "भारतीय दार्शनिकोंके निकट नास्तिकत्वका अर्थ पश्चात्यियोंके भावसे नितान्त विपरीत है। इसका एक क्रियावान, व्यस्त और व्यक्तित्वधारी मनुष्यी परमेश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार या प्रभु कहते हैं। परंतु हिन्दू दार्शनिकोंने उससे ऊपर एक उच्च शक्ति मानी है। चाहे वे दा परमात्मा अथवा पुरुषके नामसे पुकारें। इस शक्तिको अस्वीकार करना था कि जिसके यथार्थ नास्तिक समझा जाता था।"

हिन्दू सिद्धांतके विषयको पूर्ण करनेके पहिले भारतके अत्यन्त उपयोगी उपदेशको बताना नहीं करना चाहिए —

नाना प्रकारके आचार्योंने अनेकानेक सिद्धांत हैं परन्तु तुम्हें वर्णोंका ग्रहण करना चाहिये

प्रकार तप द्वारा पुराने कर्म्मोंका नाश करनेसे और नये कर्म्मोंके न करनेसे भविष्य जीवनकेलिए आस्रव नहीं होता। आस्रवके न होनेसे कर्म्मोंका नाश हो जाता है। और इस ढंग पर पापका नाश हो जाता है। और इस प्रकार दुःखका विध्वंस हो जायगा। ऐ भाइयों! निगन्थ (जैनी) ऐसा कहते हैं......... मैंने उनसे पूछा कि क्या यह सत्य है कि इसको तुम मानते हो और इसका तुम प्रचार करते हो?....... उन्होंने उत्तर दिया....... हमारे पथप्रदर्शक नातपुत्त सर्वज्ञ हैं।.... यह अपने ज्ञानकी गंभीरतासे यह बताते हैं: तुमने भूतकालमें अशुभ कर्म्म किए हैं। इसको तुम कठिन तपस्या और कठिनाइयोंको सहन करके नष्ट करदो। और जितना तुम मनसा वाचा कर्मणासे अपनी इच्छाओंको वशमें करोगे उतना ही अशुभ कर्म्मोंका अभाव होगा। ....इस प्रकार अंतमें समस्त कर्म नष्ट हो जायगे और सर्व दुःख भी। इसमें हम सहमत हैं।" (Majjhima ii, 214 cf. i, 238)" इ० हे० ऐ० जिल्द २ पत्र ७०।

इस सहमतिके होने हुए भी जब परीषहाजयकी कठिनाईका सामना पड़ा जिसका अर्थ सन्यासके संबंधमें सर्व प्रकारकी कठिनाइयोंको सहर्ष सहन करना है और जब उसने अपनेको दुबला और कमजोर पाया परन्तु वह ज्ञान प्राप्त न हुवा जिसकी वह खोजमें था तो बुद्धने ऐसा कहा.--

ा साधन किये हुए करना चाहता था। संभवतः उसने इस
ाभी ध्यान नहीं दिया कि शिखर पर पहुंचनेके लिए सीढ़ी
ावश्यकता होती है। और यह कि तपस्यासे सिवाय दुःख
क्लेशके और कुछ नहीं प्राप्त होता यदि वह सम्यग्दर्शन और
्ज्ञानके साथ न हो। इस प्रकार बुद्ध बड़ी अवस्था तक
मार्गका प्रचार करता रहा। और लोगोंको दुःखसे बचनेके
निर्वाणकी शून्यतामें गर्त्त हो जानेका उपदेश देता रहा।
अस्सी वर्षकी अवस्थामें सूअरका मांस खानेके पश्चात् मृत्यु
प्राप्त हुवा।

द्धके उपदेशका प्रभाव बहुत लोगोंके हृदयों पर इस कारणसे
ा कि उसमें कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ती थी और उसने
ायोगकी कठिनाइयोंको भी, जो वास्तवमें एक व्यर्थ मार्ग
रीरिक क्लेशोंका है और जिसका तपस्याके यथार्थ स्वरूपोंसे
ने जैनसिद्धान्तमें दिये हुए हैं पृथक् समझना आवश्यक है,
नका कर दिया था। परन्तु बुद्धसिद्धांतके विषयमें एवं उसके
ावागमनके मतके संबंधमें जिसमें कर्म्म करनेवालेके स्थान पर
ई अन्य पुरुषको कर्म्मोंके फल रूप दुःख सुखको भोगना पड़ता।
और उसकी मानी हुई आत्माओंकी अनित्यताकी बावत हम
हैं, जो कुछ विचार करें वा कहें तो भी हमको उसकी सम्मति
ावोंके दुःखको बहुत स्पष्टरूपमें जान लेनेके लिए और उस
खको शब्दोंमें अपूर्व योग्यतासे चित्रित करनेके लिए अवश्य

ग-वर्षा-अग्नि इत्यादि जैसे नैसर्गिक घटनाओं या विविध
गओं व शिल्पों जैसे शासनका ज्ञान भोजन बनानेकी विद्या
दिके रूपक अर्थात् सजली किया (Personifications)
गया है। परन्तु इन विद्वान जिज्ञासुओंने एकको भी वेदों,
वेद इन्जील या जिन्दावस्ताका भेद नहीं मिला। पूर्वीय
भाषाओंके ज्ञाता (Orientalist) विचार करते हैं कि
होंने कहे हुए सूर्य, इन्द्र और अग्निको सूर्य बादल और
गका अलंकार मानना और पवित्र इन्जीलके नये और पुराने
अहद नामोंको ऐतिहासिक रीतिसे पढ़ना सत्य धर्मकी तहको
पहुंच जाना है। और वर्तमान समयके विद्वानोंने अपना एक
प्रकारका 'भरोसा' समाज स्थापित कर लिया है जिसका हर
एक सदस्य हर समय इस चिन्तामें लगा रहता है कि इस बात
को ज्ञात करे कि उनकी इस प्रकारके अन्वेषणोंकी शाबाशी
किसको दी जाये और इससे विदून किसी निजी स्वार्थताके
जाहिर कर दें। यदि मैं इन जिज्ञासुओंके धार्मिक अन्वेषण व
मालूमात पर थोड़ा भी विचार करूं तो उसके लिये कमसे कम
एक सहस्र पृष्ठोंकी पुस्तक लिखनेकी जरूरत होगी। यह बात
नहीं है कि यह लोग विद्याके लायक नहीं हैं या उनकी शिक्षा
[illegible] है [illegible] हैं कि इस
समय उनके [illegible] नहीं हैं परन्तु [illegible]
वह सबके सब बुद्धिको-[illegible] हैं और [illegible]

। हैं और यह नहीं सोचा कि उनके अनेक देवी और कि जो कारनामे बयान किये गये हैं वह देवताओंके या नहीं। इन्द्रने अपने गुरुकी स्त्रीके साथ जार कर्म और देवगुरु (बृहस्पति) ने अपने बड़े भाईकी भार्याको और सोम यानी चन्द्रने स्वयम् देवगुरुकी स्त्रीसे एक रण किया। परन्तु सनातनधर्म्मावलम्बी इस प्रकारके नों पर दृष्टि नहीं देते हैं। इन आश्चर्यजनक देवताओंकी आश्चर्यजनक बात यह है कि अब उनके कारनामे जारी । अर्थात् उनके सब काम पुराणोंके लिखे जानेके पहले उन हो चुके थे। जीवित पुरुषोंकेलिये यह कैसे सम्भव है! तः ऐसे व्यक्तियोंके लिये जो एक क्षण भर भी अपने ोकी स्त्रीको भगानेका खयाल किये बिना नहीं रह सके. इन देवताओंके केवल इसी विशेषतासे बुद्धिमान पुरुषोंको खुल जाना चाहिये थीं परन्तु अज्ञानसे विशेषतया लोग रके फकीर ही होते हैं।

तो फिर वैदिक धर्म्मको सच्ची शिक्षा क्या है और सम्मोंमें हुये अनेक देवी देवताओंका भेद क्या है? परन्तु इससे कि मैं इन जटिल प्रश्नोंका उत्तर दूं यह आवश्यक है कि ह मैं स्पष्ट कह दूं कि ... रके वेदवेत्ता अर्थात् ... सनातनधर्म्म ... मनुष्यके ... न करनेवाला ... हिन्दोस्तानी

क्यों वेदोंके समझनेमें असमर्थ रहे। इसका कारण
वेदोंकी भाषा संस्कृत नहीं है जैसे पवित्र इन्जीलकी
रानी और यूनानी और कुरान शरीफकी अरबी नहीं।
इससे आपको आश्चर्य होता है ? तो भी यह
जिन धार्मिक पुस्तकोंका मैंने यहां पर उल्लेख किया है
दो भाषाओंमें लिखी हुई हैं, एकमें नहीं। जिन शब्दों
इबारत लिखी गई है वह निस्संदेह एक कौमकी भाषा है
इन शब्दोंकी एक दूसरी लिपि अर्थकी [illegible]
भाषा है। धर्मवेत्ता इस छिपी हुई भाषासे नितांत
थे, इन्होंने अपनी सारी कारीगरी [illegible]
भाषाओंमें नकल और अनुवाद करनेमें सर्फ कर दी
भावकी तहको यह न पहुंच पाये। यही कारण है
जेन्दावस्था, इन्जील और कुरान, उन विद्वानोंकी
कहानियों और दरियाओं और नालों और झीलोंके
से भरी हुई जान पड़ती है। सामान्यतः यह पवित्र
ही इनका शब्दार्थ विरुद्ध आज्ञा देती है। [illegible]
[illegible] हवाला देकर हिंदू शास्त्रोंके सम्बन्ध
कहते हैं ([illegible] पृ० १०२)—

"पवित्र पुस्तक [illegible] साधारण पुस्तकोंकी भांति उन्हें
नहीं पढ़ना चाहिए। यदि इनका [illegible]
[illegible] होना तो [illegible] उनके अध्ययनमें करें।

वेद स्वयम् अपना भाव प्रगट नहीं करते है और वह तब समझमें आ सकते है कि जब गुरु उस वस्त्रको जिससे ढके है उतार देता है और उन बादलोंको जो उनके तरिक प्रकाशको छिपाये हुये हैं, हटा देता है।"

भाग्यवश स्वयम् डेकोलिपेट हिंदुमतके समझनेमें रहा। यथार्थ उसको इस बातका ज्ञान जरूर हो गया था का भाव छिपा हुआ है। उसका दिमाग वर्तमान प्राकृतिक से इतना भरा हुआ था कि उसमें आत्मिक ज्ञानके असली के लिये बहुत कम अवकाश था।

ई-एन-अय्यर महोदय अपनी बहुमूल्य पुस्तक "द्री ट हिस्ट्री ओफ भारतवर्ष"में लिखते हैं कि "पवित्र शास्त्र मनके किस्से नहीं बताते हैं। इनमें मनुष्योंके लिये अत्यंत कारी शिक्षा है। आत्मिक उन्नतिका वैज्ञानिक मार्ग इनमें ास, भूगोल, नीति और राजनीति शासन सम्बंधी बातोंकि र वर्णन किया गया है।"

इनोंके समझनेके लिये वेदांतोंका जानना आवश्यक है। राम लक्ष्मण (अर्थात् लिखन) सबसे ज्यादा आवश्यक है क्षण इन विद्रूप किस्सोंके देहोंका भावार्थ समझानेका काम है अपनी रची हुई महाभारतकी भूमिकामें के. एन अय्यर रह लिखते हैं—

[illegible] मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये पूर्व समयके

स बातको अब लोग समझने लगे हैं कि इन्जीलमें विस
मवतः और सब पुस्तकोंकी निसबत लोग बहुत कम
पाते हैं, असंख्य ऐसी आयात लिखी हैं जिनको ऐसी
विद्वान जो उनके असली भावको खोल सके, कोई नहीं
सका है। यह कुंजी कबबालामें मिलेगी"। कबबाला
तीनें विभाजित है जिमेट्रिया, नौटेरिकोन और तेमुरा।
। जिमेट्रिया शब्दोंके मूल्य पर निर्भर है और यह बताता
जो शब्द एक संख्याके होते हैं वह एकार्थवाची भी
हैं। शेष दो बहुत पेचदार हैं जैसे किसी शब्दके अक्षरोंको
२ शब्द मानकर उनसे एक जुमला बनाना इत्यादि। मगर
ो उनसे यहां पर कुछ सम्बंध नहीं है। यहूदियोंके गुप्त
तमें इसप्रकारके अङ्कगणित या संख्या पर बहुत जोर
ा गया है। इबरानी भाषामें हिन्दुसे पृथक् नहीं हैं। हर एक
रको एक विशेष संख्या है जैसे अ = १, ब = २, ज = ३,
= ४। इस संख्यापर यह नियम निर्भर है कि हर शब्द एक
म या परिमाण है और हर रकम एक शब्द। इस प्रकारका
खाका शुमार उर्दू फारसीमें भी है जिसको सामान्यतः अबजद
केहरा) कहते हैं। ज्ञात होता है कि यहूदियोंने अपनी पवित्र
तकोंमें इसका बहुत प्रयोग किया है। इसप्रकार उनकी पवित्र
तकें केवल रहस्योंका एक समूह हैं जिनका भाव उससमय ज्ञात
सका है, जब उनकी इबारतका गुप्त भाव प्रत्यक्ष हो जावे।

ाते हैं जो बहुत समयसे बराबर चले आये हैं इस छिपी
ई विद्याका बार २ उल्लेख इन्जीलके नये अहदनामेमें
मेलता है और उपनिषदोंमें और अन्य प्राचीन शास्त्रोंमें
ी कि जिनमें उसके कतिपय छिपे हुये रहस्योंको सावधा-
ीसे प्रकट किया गया है और इधर उधरके स्थलोंसे जो
सके प्राप्त हुये हैं, यह प्रत्यक्ष रीतिसे स्पष्ट है कि यह सब
पुराने धर्मों और फिलासफी (दर्शनों) में वास्तवमें एक
थी और यथार्थमें उन सबकी बुनियाद थी। ईसाइयोंकी
कलीसियाके आरम्भमें, जो एक गुप्त समाज Secret society
की भांति थी इस मर्मविद्याकी बहुत सावधानीसे रक्षाकी जाती
थी। और इस नियमानुसार कि बहुतसे बुलाये जाते हैं परंतु
उनमेंसे थोड़े ही चुने जाते हैं यह केवल उन्हींको सिखाई
जाती थी जो उसकी शिक्षाके अधिकारी समझे जाते थे।
राजनीतिकी धर्मविरुद्ध चालिसी और स्वार्थी पादरियोंकी
चारित्र सम्बंधी निर्बलताओंके कारण आरम्भ होकी शता-
ब्दियोंमें ईसाइयोंके समाजसे यह मर्मज्ञान जाता रहा। और
उनके स्थानपर बादकी शताब्दियोंमें नये और पुराने अहद
नामोंके शब्दोंकी जाहरी मृतशिक्षा, पर ईश्वरपूजनका
पर आज्ञानुवर्ती नियम स्थापित किया गया। इस खयाल
पर कि इन्जीलने आकाशवालोंकी भांति मनुष्यके साथ
ईश्वरके गतदालके बनावका उल्लेख है उनके पति-

ी शताब्दीमें भी ओरीजेनने जो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनि-
के अनुसार ईसाई समाजका सबसे प्रख्यात और प्रखर विद्व
गुप्त रहस्यकी रीतिसे पवित्र इन्जीलकी शिक्षाकी तहतक
चनेके लिए प्रयोग किया था। ओरीजेनको पूरा विश्वास था
नवीन और प्राचीन अहद नामोंमें एक अक्षर भी ऐसा नहीं
जो ईश्वरीय अर्थ और रहस्यसे रिक्त हो। वह प्रश्न
रता है:—

"परन्तु क्यों कर हम इस गुप्त विचारके साथ इन्जीलकी ऐसी कहानियोंको सहमत कर सकते हैं जैसे 'लूत'का अपनी पुत्रियोंसे एकान्तसेवी होना, इबराहीमका पहले अपनी एक स्त्रीसे और बादको दूसरी स्त्रीसे व्यभिचार कराना, सूर्य्यके निर्माण होनेके पूर्व तीन दिन और रातका होना। ऐसा कौन निर्बुद्धि होगा जो यह मानले कि ईश्वरने एक साधारण मालीकी भांति अदनके बगीचेमें पेड़ लगाये। अर्थात् वास्तवमें ऐसे पेड़ लगाये कि जिनको लोग देख सकें और स्पर्श कर सकें और इनमेंसे एकको जीवनका और दूसरेको नेकी व बदीके ज्ञानका पेड़ कायम किया, जिनके फलोंको मनुष्य अपने प्राकृतिक जबड़ोंसे चबा सकें। कौन इसको स्वीकार कर सकता है कि ईश्वर इस बगीचेमें टहला करता था या यह कि आदम एक पेड़के नीचे छिप गया और काइन ईश्वरके चेहरे (सामने) से भाग गया। बुद्धिमान पाठक

पृ० २६६ से एक विद्वत्तापूर्ण निबन्धका कुछ अंश संक्षेप में जिसमें कुछ विरोधोंका उल्लेख है आपके समक्ष प्रस्तुत ता हूं:—

"इन्जीलें परस्पर एक दूसरेका विरोध करती हैं। और यूहन्नाकी इन्जील शेष ३ इन्जीलोंसे इस कदर भिन्न है कि सब जिज्ञासुओंने इसमें और शेष सब इन्जीलोंमें जो जीवन चरित्रकी भांति लिखी हुई हैं विवेचन किया है.........इसके अतिरिक्त कि यूहन्ना मसीहका उल्लेख शेष ३ इन्जीलोंसे बहुत विरोधके साथ करता है यह ईसूके रात्रि भोजनका (Supper) उल्लेख नहीं करता है, यह ईसूकी मृत्युकी दूसरी तिथि नियत करता है, यह निस्तारपर्वको ३ ईदोंका उल्लेख करता है जब कि और लेखक केवल एकहीका करते हैं। और यह ईसूकी जीवनसम्बंधी सब घटनाएं यरूशलममें होना बताता है जब कि औरके अनुसार ईसूके जीवनका अन्तिमभाग ही वहां व्यतीत हुआ। यूहन्नाकी इन्जीलमें जीवन चरित्र देनेवालेका अभिप्राय बहुत कम रह जाता है। उसमें करामातें हैं। अर्थात् यह ज्यादा आश्चर्यजनक हैं और साथ ही साथ यह गुप्त रहस्योंकी ओर सङ्केत करती हैं। ईसूका सब जीवन शेष तीनों इन्जीलोंसे बहुत ज्यादा है और 'लोगोस' (ईश्वर वाक्य)की भांति है। परन्तु साथ ही में ईसूको यह योसुफका पुत्र बनाता है और कुमारीके

बच्चा होनेका उल्लेख नहीं करता है।......ज़ दो १८
परस्पर सहमत होती है, मत्ती ईसूकी उत्पत्ति
सनसे ४ वर्ष पूर्व हिरोदके समयमें निर्धारित करता
लूका उसको १० वर्ष पश्चात् नियत करता है
ईस्वीमें। परन्तु आगे चलकर वह प्रतिपादन
तिबारय कैसरके राज्यके १५ वीं वर्ष (=२६ई०,
३० वर्षका था!......मरकस करामाती जन्मका
करता है। मत्ती और लूका यूसूको २ विविध वं
यूसुफ और दाऊदके वंशमें देते हैं।......परन्तु
से उत्पन्न होनेकी विरोधी है। यदि मरियम और
करामाती जन्मका ध्यान होता तो वह जब मसीहके
अपने पिताके काममें संलग्न होनेका उल्लेख
(देखो लूकाकी इन्जील बाब २ आयत ५०)
न होते। इन ३ जीवनचरित्र सम्बंधी इन्जीलोंमें
करामातें बहुत कुछ एक भांतिकी हैं परंतु जिन
उनका घटित होना वर्णन किया गया है वह बहुत
है.....सबसे बड़ी करामात लजारसका जिलाना केवल
की इन्जीलमें पाया जाता है। शेष करामातें
हैं (जैसे रोटियोंकी संख्याका बढ़ जाना, पानीको
कर देना इत्यादि)। जो पुरुष खास (हवारी)
मौजूद थे उनके नाम दो इन्जीलोंमें एकसे नहीं

मसीहके जी उठनेके निमित्त इनके लेखक एक दूसरेसे परस्पर विरोध रखते हैं। मरकसकी इन्जीलके १६ वें वाक्यकी ९ वींसे २०वीं आयतोंका लेख बादका बढ़ाया हुआ है। ......लूकाकी ऐतिहासिक कल्पनाएं झूठी हैं। हिरोद कभी बादशाह न था किन्तु गवरनर था। कुरोनियसको ईसूके इतिहाससे जा मिलाता है जो सन् ७ से ११ इस्वी तक हाकिम था और इसलिये ईसूकी कहानीका उससे कोई सम्बंध नहीं है। वह लुसानियसका भी उल्लेख करता है यद्यपि वह ईसूके उत्पन्न होनेसे ३४ वर्ष पूर्व मृत हो चुका था......इन्जीलोंके लेखक जो दरियामें बपतिस्मा देनेका वर्णन करते हैं और विशेषतया यरदन नदीमें, जहां स्नान करना भी मना था, येरुसलेमके व्यवहारोंसे परिचित न थे। लूकाकी इन्जीलमें दो महायाजकों कियाफा और हनसके एक ही समयमें मौजूद होनेका उल्लेख है जो असम्भव है। ईसूका हैकलके ऊपर आंगनमें शिक्षा देना कहा गया है जो केवल बलिदानके लिये निश्चित था। व्याख्यान पूजामंदिरमें हुआ करता था। इन्जीलोंमें [illegible]ोंका यहूदियोंकी जनतासे मुकाबला करनेपर आश्चर्यजनक विरोध पाये जाते हैं। धार्मिक पर्वोंके दिवस कानूनी कार्रवाई नितान्त मना थी। इसलिये ईसूका मुकदमा निस्तारके पर्वके दिन नहीं हो सकता था। पर्वके समयों पर हथियार लेकर फिरना भी मना था।

ा। यह कहना गलत नहीं है कि उस प्राचीन संसारों सीहके समयके पहले कोई शहर भी ऐसा नहीं था जिसमें क या ज्यादह विविध धर्मोके मंदिर ऐसे मौजूद नहीं थे जो केसी न किसी खुदावन्दके मरने और जी उठनेकी परिपा- टीको बड़ी धून धामसे सर्व साधारणमें धार्मिक न मनाते हों।" नियराके मंदिरोंमें तो ईसाई मतसे इस कदर सापेक्षता पाई । थी कि दोबारा जीवित होकर उठनेवाले खुदावन्दको उके खास शब्दोंमें अर्थात् "खुदाका बरी जो संसारके को दूर करता है" कह कर बधाई दी जाती थी। निश्चय सब इस विचारको झूठा करता है कि नवीन अहदनामेका क ईसु मसीह कोई ऐतिहासिक पुरुष था। और निःसंदेह बड़े आश्चर्यकी बात है कि ईश्वरने अपने पुत्रकी सत्ताको सी पिछले या पहले पैगम्बर पर द्योतन नहीं किया। ुपतया ऐसे पुत्रकी सत्ताको जैसे ईसु, जो संसारका मोक्ष ाता है। इसके विरुद्ध यशायाह नबी द्वारा ईश्वरने प्रत्यक्षरीतिसे को बताया था (देखो इन्जील यशायाह बाब ४३ आयत ११):—

ं "मैं और मैं ही ईश्वर हूं और मेरे सिवाय कोई मोक्ष दाता : नहीं है"।

इसका खंडन कभी नहीं हुआ किंतु इसका अनुमोदन ज़र्की इन्जीलसे होता है देखो बाब ४ आयत ८।—

"एक अकेला है और कोई दूसरा नहीं है। [illegible] न कोई बेटा है और न भाई है"।

क्या वही ईश्वर जो यूसूका पिता कहा जाता।
बोल रहा है ? यदि एसा है तो वह अपने पुत्रकी
क्यों करता है ? और क्या यह वही
ईश्वर, मुसलमान अल्लाह और पार्सी
पूजते है। यदि एसा है तो उसने इनलोगोंको भी
बता दिया कि उसके एक पुत्र है। इसलाम ईसाई
वर्ष बाद स्थापित हुआ था और कहा जाता है कि
पर निर्भर है तो फिर इसका क्या कारण है कि
ईश्वर पुत्र होनेसे इनकार किया। यहां पर गौरके
मसाला है। हम इन दोनों बातोंमेंसे एक न एक पर
लिये बाध्य होते हैं कि या तो यूसूका आसमानी
ईश्वर, मुसलमानोंका अल्लाह और अरदहलका
अथवा इन सब धर्मोंकी पुस्तक
गई है। सत्य यह है कि इन्जील स्वयम् इसबातको
है कि यह गुप्तभाषामें लिखी गई है जिसका भाव
अन्यन्यायदायक है। यूसूकी शिक्षा दृष्टांतों द्वारा
जिनका भाव बार २ शिष्योंको समझाया जाता
भी वह प्रायः नहीं समझते थे (देखो मरकसकी
आयतें ११-१२, लूकाकी इन्जील बाब १८ आयतें
मरकसकी इन्जील बाब ६ आयत १०) यह भी
ईसूने ... भी इसके पश्चात् अपने शिष्योंकी

तिके अभागी ज्ञाताओंने स्वयं अपनेको और अपने भक्तों
नुयायियों)को उस कुंजीके खोदेनेके कारण वंचित कर लिया
इसको हर एक स्थानपर इतिहास ही इतिहास दृष्टि पड़ता
। अर्थात् यहोवाकी देवनिन्दक और मूर्तिपूजक बनी इसरा-
के साथ गाढ़ प्रेमका इतिहास या एक नवीन विज्ञापित
ये गये ईश्वरपुत्रकी जीवनीका इतिहास जिसने पापियोंको
त्र दिलानेके लिये धारण किया। निरर्थक ही इन्जीलोंके लेखक
हा २ कर अपना गला दुखाते हैं कि जो पढे सो समझे
त्तीकी इन्जील बाब २४ आयत १५) ऐसे विश्वासी हम
ने इतिहासके हैं कि हम इस आशासे प्रभावित नहीं हो
स्ते हैं। इन्जीलकी पुस्तक प्रकाशित वाक्यमें भी ऐसा ही कहा
देखो बाब २ आयत ७ कि:—

"जिसके कान हों वह सुने कि आत्मा समाजोंसे क्या कहता
है। जो विजयी होगा मैं उसको जीवनके वृक्षमेंसे जो ईश्व-
रीय बागके मध्यमें है, खानेको दूंगा"।

मैं विचार करता हू कि निसान्दोंकी तादाद बढाना निरर्थक
यह पर नितान्त स्पष्ट रीतिसे मानता यह है कि जो
एक ऐतिहासिक नहीं है वह इतिहास समझ कर पढी गई हैं।
लि एक बाप और बेटेका नाता हो जहां दोनों सदैवके और
कालीन कहे जाते हैं ऐतिहासिक भावके निषेध करनेका
ति है। जैसा कि मैंने की ऑफ नालिज में कहा है। हमारे

लटी ही होनी चाहिये, प्रस्तुत है। परिणाम प्रत्यक्ष है।
तो इस बातकी चिन्ता थी कि पढ़नेवाले उनके लेखोंको
सेक रीतिसे न पढ़लें, और उन्होंने ऐतिहासिक भावके
करनेमें कोई कसर न उठा रक्खी। नये अहदनामेकी
इस प्रकार जीव (=यूदू) की आत्मिक उन्नतिका वर्णन
है न कि एक व्यक्ति यूदूकी जीवनी और शिक्षाका,
। कई लेखकोंने लिखा हो।
तः हमारी सम्मति यह है कि हिन्दू शास्त्रोंकी भांति
के विरोध भी या तो पुस्तकोंके लेखकोंने ऐतिहासिक
: निषेधके लिये इरादतन पैदा किये हैं या दृष्टान्तरूपी
रोंकी रचनामें स्वयं पैदा हो गये हैं। हम अभी देखेंगें
ह सम्मति केवल ठीक ही नहीं साबित होगी, प्रत्युत
लकी शिक्षाको प्राचीन धर्म्मों और साथ ही साथ सत्य
नेक शिक्षासे परस्पर सहमत करा देगी।
अब मैं इसलामकी ओर आता हूं जिसको आप मानते हैं
करीब १३ सौ वर्ष हुए कि एक महम्मद नामी व्यक्तिने
रका दाउमें इतिहाससे बहुत कुछ सम्बंध हो गया, स्थापित
ा था। इसलामका धर्म्मशास्त्र भी अलङ्कार रूपमें लिखित
। इसमें विशेषतः इन्जीलके पुराने अहदनामेकी इबारत
म्मलित है और इसके अतिरिक्त कुछ रिवायतें व हदीस
र भी हैं इसका विश्वास है कि—एक प्रारम्भकी नक्शा है

दि सत्यता केवल थोड़े ही पुरुषोंको ज्ञात था चाहे यह
रीय प्रकाश (मर्मज्ञ)से हो या अपने विचार (फिल-
ा या स्वतन्त्र विचारवाले) से"
: यह भी सूचना हमें प्राप्त होती है कि अरस्तूके मुसल-
ति इस सम्मतिसे साधारणतया सहमत थे । उदाहरण
पर इखवानकी यह सम्मति थी कि बुद्धि और ईमानमें
रण विरोधका नहीं हो सकता है । क्योंकि ईमानके
निस्संदेह फिलसफाके नियमोंके प्रतिरूप ही हैं जो
रूपमें वर्णन किये गये हैं (पूर्वकथित प्रमाण) ।
र जो मान प्रारम्भके इसलामी प्रचारकोंके हृदयोंमें
फाके लिये था वह इस बातकी साक्षी है कि उनको इस
विश्वास था कि हदीसकी आयतोंमें और विज्ञानमें
एक वास्तविक आंतरिक मित्रता है । इस बातका प्रभाव
रिणाम पर नहीं पड़ता है कि मुसलमानोंका अत्याचार
शताब्दियोंमें ज्ञानके नाश होनेका बहुत कुछ कारण हुआ।
पैगम्बर साहबने हदीसमें बुद्धिकी बहुत सराहनाकी
र प्रतिपादन किया है "वह व्यक्ति मृत्युको नहीं प्राप्त
है जो अपने जीवनको ज्ञानोपार्जनमें लगाता है" (दि-
त ओफ मोहम्मद) हजरत अलीकी बाबत भी यह कहा
है कि उन्होंने ऐसा आदेश किया है कि "फिलसफा
रकी खोई हुई भेड़ है । यदि तुम्हें उसको काफिरोंसे प्राप्त

ताओंमें सबसे बडे तीन हैं जो वास्तवमें एकहीमें हो जाते हैं। यह तीन—सूर्य्य, इन्द्र और अग्नि हैं जिनके मानके लोगोंने बहुत त्रुटियां की हैं। इनकी असलीयत लिये धार्मिक विज्ञानके वह परिणाम जो हम ने व्याख्यानमें दे चुके हैं, स्मरण योग्य हैं। उनको मैं यहां पर कहूंगा जिससे प्रमाण देनेमें सरलता हो। प्रकार हैं—

आत्मा एक द्रव्य है जो सर्वज्ञताकी योग्यता रखता है। वह सर्वज्ञ होता यदि वह इस अपवित्रताके मेलसे जो साथ लगा हुआ है, पृथक् होता।

अपवित्र आत्मा इन्द्रियों द्वारा बाह्य संसारसे व्यापारमें है और आवागमनमें चक्कर खाता है।

—तपस्या और इन्द्रियनिग्रह, परमात्मापन और पूर्णता प्राप्तिके साधन हैं।

दूसरे शब्दोंमें हर एक आत्मामें परमात्मा हो जानेकी योग्यता मान है परन्तु जब जब तक पुद्गलसे वेष्टित है तब तक वह जीव अपवित्र अवस्थामें ही है और तपस्या द्वारा उसे निष्कृति हो सकती है। अन्य बातें, जो मोक्षके वास्ते जाननी आवश्यक हैं वह यह हैं:—

—शुद्ध जीव द्रव्यका स्वरूप।

—जीवात्मा (अपवित्रात्मा)की दशा। और

सदैव स्थापित रहता है परन्तु शुद्ध समय २ पर प्रत्यक्ष
विलीन होती रहती है जैसे सोनेमें उसका विलीन हो
।

म · जीवनके लिए शिक्षाका द्वार बुद्धि है चूंकि यहां
: व गुरु तो ज्ञानप्राप्तिके सहकारी कारण ही होते हैं,
ी कारण नहीं।

म 'बुद्धि सामान्यतः प्रकृतिसे सम्बंध रखती है और
कम जीवकी ओर आकर्षित होती है । उदाहरणस्वरूप
त्व बुद्धिमत्ताका देखिये कि जिसको अभी तक आत्मा
ता ही नहीं लगा है। इसलिये जीव और प्रकृतिके समागम
म्बन्ध रचनामें इंद्र (जीवात्मा) का अपने गुरु बुद्धि ।—
लो (पुद्गल या प्रकृति)से भोग करना बांधा गया है।
२-फोड़े फुंसियां अज्ञानी जीव हैं जो प्रकृतिमें लिप्त होनेके
ः अपने वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। यह अज्ञानताके
ण प्रथम अन्धे हैं।

३-परंतु जब उनको ब्रह्मज्ञान अर्थात् इस बातका ज्ञान कि
ः। ही ब्रह्म है, हो जाता है, तो ऐसा होता है मानो उनकी
खुल गईं । इसी बातको, ब्रह्माजीने प्रार्थना पर कृपालु हो
ारके चिन्ह फोड़े फुंसियोंको आंखोंमें परिवर्तित कर दिया
गया है।

।-इन्द्र अपने पिताके भी पिता हैं क्योंकि—

६—७ हाथ
६—और ७ जिव्हायें हैं।
७—वह देवताओंका पुरोहित है जो उसके बुलानेसे आते हैं।
८—वह भक्ष्य और अभक्ष्य अर्थात् पाक और नापाक दोनों
को खा जाता है। और
९—वह देवताओंको बल देता है। अर्थात् जित कदरत्याग
बलिदान अग्नि पर चढाया जावे उतनी ही देवताओंकी
पुष्टि होती है।
न अत्यन्त सुन्दर विचारोंकी विवेचना निम्न भांति है:-
१—तप तीन प्रकारसे होता है-अर्थात्
(क) मनको वशमें लाना
(ख) शरीरको वशमें लाना और
(ग) वचनको वशमें लाना
यदि इनमेंसे केवल दोको ही वशमें लाया जावे तो तप अपूरा
। और कोई चतुर्थ वस्तु वशमें लानेको नहीं है। अब
तपस्याके यह तीन आधार हैं इसलिये उसके तीन पग
गये हैं।
२—सात हाथोंसे भाव ७ ऋद्धियोंसे हैं। जो तपस्वियोंको
हो जाती हैं। मेरु देहमें जो ७ योगके चक्र हैं उनमेंसे हर
एक प्रकारकी ऋद्धि (शक्ति) गुप्त रीतिसे सुसुप्त मानी
। तपस्याबलसे यह शक्तियां जागृत हो जाती हैं। चूंकि

शक्तिका प्रयोग केवल हस्तके द्वारा होता है इसलिये
शक्तियोंको अग्निके ७ हस्त माना है।

३—सात जबानें अग्निकी ५ इन्द्रियां, मन,
जिनको तपकी अग्निमें स्वाहा या भस्म करता है।

४—चूंकि तपस्या करनेसे आत्माके ईश्वरीय
मान होते हैं इसलिये अग्निको देवताओं (
पुरोहित कहा गया है जो उसके आह्वानमें आते हैं।

५—पुण्य और पाप दोनों बंधन अर्थात्
कारण हैं जिनमेंसे पुण्यसे हृदयग्राही और पापसे
योनियां मिलती हैं। इन दोनोंको मुमुक्षको शुद्ध
(समाधि) के लिये छोड़ना पड़ता है। इसलिये अग्नि
(पुण्य) और अपवित्र (पाप) दोनोंका भक्ष्य
कहा है।

६—अग्निका भोजन इच्छायें हैं अर्थात् मनकी इ
क्योंकि तपस्यासे भाव इच्छाओंके त्यागसे है।
करनेसे आत्माके ईश्वरीय गुण और विशेषण
हैं। अलंकारकी भाषामें इन ईश्वरीय गुणोंको
इसलिये अग्नि पर (इच्छाओंका) बलिदान चढ़ानेसे
की पुष्टि होती है।

अग्निका असल स्वरूप है जिसको आप जानते हैं,
ी जाग भी पूजते हैं।

मालाकी रचना (तरतीब) से स्पष्टतया निम्नलिखित भाव
: होते हैं:—

१–हर व्यक्ति अपनी सत्तामें ईश्वर है अर्थात् जीवात्मा ही
परमात्मा है।

२–शुद्धात्मा पूर्ण परमात्मा होता है क्योंकि वह सर्वज्ञतासे
जो परमात्मापनका चिन्ह है, विशिष्ट होता है।

३–जीवका परमात्मापन उसके प्रकृति (पुद्गल) से संयुक्त
होनेके कारण दबा हुआ है। और

४–तपस्या वह मार्ग है जो पूर्णता और परमात्मापनको
पहुंचाता है।

हम इसप्रकार अवलोकन करते हैं कि वेदोंके देवी देवता-
के किस्सोंमें जीवनके वाज़ क्लिष्ट प्रश्नोंको ही अलङ्कारकी
शमें ही प्रस्तुत किया गया है। यह मजमून बहुत रोचक है।
न्तु मैं इस पर ज्यादा ठहर नहीं सकता हूं आप इसका उल्लेख
 लिखी पुस्तक The Practical Path में विशेषतया
गे और की ओफ नालिजमें भी, जिसमें विविध जातियोंके
देवताओंके रहस्यका अनुसंधान पक्षपातरहित हो कर
या गया है। एक दूसरी पुस्तक, जिसका प्रमाण मैं इस
बंधमें देना चाहता हूं The Permanent History of
Vorasa है जिसका इस व्याख्यानमें भी कई बार
ख आया है। इसमें सैकड़ों देवी देवताओंके वास्तविक

बुद्धि है जो मनके आत्मिक अंधकारको हटाकर उसमें
त्मिक सृष्टिकी रचना करती है। विष्णु जो रक्षा करने
है, धर्म है, जिससे पुण्यकी वृद्धि होती है। वह केवल
ी सृष्टिकी रक्षा करता है किन्तु और किसी वस्तुकी नहीं,
शिव या महेशसे भाव वैराग्यसे है जो कर्म—पुण्य
ाप दोनोंका नाश करता है । दूसरी दृष्टिसे ऋषभ धर्म
ऋषभका पुत्र भरत भक्ति, और बैल धर्मका चिन्ह या
है। जम्बूद्वीप मानवजातिका भक्तिभाव है और भारतवर्ष
नियम और रीति है । कुरुक्षेत्र दोनों भावोंके मध्यका
है। प्रयागसे भाव हृदयसे है । मथुरा खोपड़ीका सहस्रार
और गोवर्धन मन है । हरिद्वार कषायरहित शांतिका
है। गङ्गा यमुना और सरस्वती, इड़ा पिङ्गला और
म्ना नाड़ियां हैं । युग तपस्याके दर्जे हैं । और मानुषिक
दश वर्ष या साल हैं आंतोंका भाव धर्म मार्गके स्थानोंसे
ससे गुजरकर परमानन्द प्राप्त होता है।

मैं विचार करता हूं कि आपको हिन्दूओंकी देवमालाकी
[illegible] ज्ञान करानेकेलिये इतना लिखना पर्याप्त होगा।
मैं [illegible] शब्दोंके सुलझानेका प्रयत्न करूंगा जो
[illegible] और [illegible] धर्मोंका बड़ा भारी [illegible] है। सबके
[illegible] यह विचार [illegible] मनमें निश्चय [illegible] चाहिये
[illegible]

आपके समक्ष इस किस्सेके वास्तविक रहस्यको प्रस्तुत हूं:—

बाग अदन जीवके गुणोंका अलङ्कार है। अर्थात् इसमें जीवको बाग और गुणोंको पेड़ोंसे ताबेर किया गया है। पेड़ोंमें जीवन और नेकी व बदीके बोधके पेड़ ही मुख्य हैं। अत एव वह बागके मध्यमें पाये जाते हैं।

) आदमसे भाव उस जीवसे है जिसने मनुष्यकी योनि पाई है अर्थात् जो मानुषिक योनिमें है।

) हव्वासे भाव बुद्धिका है जो आदमके सोनेके समय आदमकी पसलीसे बनाई गई है। यह एक युक्तियुक्त अलंकार है क्योंकि अन्ततः बुद्धि तो जीवका ही गुण है। जिसको नीन्दसे जागने पर मनुष्य अपने पास पाता है।

) सब प्राणियोंमें केवल मनुष्य ही मोक्षप्राप्ति कर सकता है और इसलिये धार्मिक शिक्षाका वही अधिकारी है। पशुओंको बुद्धिकी कमी और शारीरिक तथा मानसिक न्यूनतायें मोक्षमें बाधक होती हैं। स्वर्ग और नर्कके निवासी भी तपस्यासे वंचित रहनेके कारण मोक्ष नहीं प्राप्त कर सके हैं। अतः मनुष्य ही केवल धार्मिक शिक्षाका अधिकारी है।

) जीवन वृक्षका भाव जीवनसे है और नेकी व बदीके ज्ञान का अर्थ संसारकी वस्तुओंका भोगकारी गुण परि[illegible] है।

: और द्वेष इच्छाकी दो साधारण किस्में हैं (रोचक
तुको अपनानेकी इच्छा = राग और बुरी वस्तुके नाश
नेकी इच्छा = द्वेष)। और इच्छा ही कर्म बंधान और
वागमनका कारण है जैसा कि पहले एक व्याख्यानमें
ाया गया है अतः नेकी और बदी रूप ज्ञानका फल
राग व द्वेष) माना है।

व इस कारण कि यह एक असंयुक्त द्रव्य है अविनाशी
। परन्तु शरीरी होनेके कारण जीवन और मृत्यु उसके
ाथ लगे हुये हैं। इसी कारण इन्जीलमें आया है (देखो
दायशकी किताब बाब २ आयत १७) कि 'जिस दिन
[उसका फल खावेगा तो निस्संदेह मर जायेगा' ।
: स्मरण रखना चाहिये कि आदम उसीदिन नहीं मरगया
देन कि उसने नेकी और बदीका ज्ञान रूपी फल खाया
उसके पश्चात् बहुत वर्षोंतक जीवित रहा और ९३० वर्ष
कर मरा (किताब पैदायश बाब ५ आयत ५) अतः पैदा-
। किताबके दूसरे बाबकी १७ वीं आयतका असली भाव
ा सका है कि वर्जित फलके खानेसे मनुष्यको मृत्यु परा-
करलेती है।

सांपका भाव इच्छासे है, जिसके द्वारा बुराईकी शिक्षा
मिली। यह जीवको धर्मसे हटाकर बुरे कामोंकी ओर खींच
लेती है।

मृत्यु देवता) की खबर लेनेवाला ठीक अपने आप स्व
पीतांबर ओढ़े आराम में है। प्यारे! लोग तुझे शिकार समझ
तो क्या, कोई तुझे हरिन कहता है तो क्या, तुझे ब्राह्मण
क्षत्रिय, अमीर या फ़क़ीर अनुमान करते हैं तो क्या, तू
अपने यथार्थ स्वरूप में स्वयं कृष्ण परमात्मा, दोनों लोकों
उपास्य देव, प्रत्येक रंग में ज्योतिर्मय प्रकाशमान है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत्। (कठ० उप० १-४-

अर्थ—जिसमें से सूर्य उदय होता है और जिसमें अ
होता है, जिसमें समस्त प्राणी प्रविष्ट हुए, जिससे कोई पृथ
नहीं, यह आत्मा वही है।

He is the unseen spirit which informs
All subtle essences! He flames in fire
He shines in sun and moon, planets and stars !
He bloweth with the winds, rolls with the waves.
He is Prajapati, that fills the worlds !

अर्थ—वह (वस्तु) अदृश्य आत्मा है (अर्थात् वह च
क्षु से न देखा जानेवाला है), जो समस्त सूक्ष्म तत्त्
में प्रवेश करता है (या रम रहा है), वह अग्नि के भीत
प्रज्वलित है, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र और तारों में वह चमकता
पवनों के साथ वह चलता है, लहरों के साथ लहरा
है, वही प्रजापति का स्वरूप है, जिससे यह समस्त संस
व्याप्त है।

राम न हीं न हीं [illegible], न हीं देवन को देव।
न हीं श्रद्धा [illegible] न हीं सेवक न हीं सेव ॥
न हीं सेवक न हीं सब न [illegible] न हीं शेष।
न हीं [illegible] सब रूप कियो सकल परवश ॥

उसको ढक देता है, जैसे सूर्य का तेज दोपहर के समय सूर्य को छुपा देता है।

माना कि वेदांत के ग्रंथों में इस प्रकार के श्लोक हैं—

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्य धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित् (अष्टावक्रगीता १६,४)

अर्थ—जिसका मन व्यापार से इतना उठा हुआ है कि उसके लिये आँख मीचने और खोलने की क्रिया भी बुरी लगती है, उस (प्रत्यक्ष में सुस्त) ज्ञानवान् को सच्चा आनंद प्राप्त है और किसी को भी नहीं।

'व्यापार से मन उठने' से प्रयोजन नीचे-लिखे पद्य की तरह मृत्यु से नहीं है:—

बक़दरे-हर सकूँ राहत बुवद बिनगर तफ़ावत रा,
दवींदन, रफ़्तन, एस्तादन, निशिस्तन, ख़ुफ़्तनो-मुर्दन।

अर्थ—प्रत्येक ठहराव के अनुसार आराम होता है, तू इस अंतर को देख, दौड़ना, चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना और मरना अर्थात् इन समस्त अवस्थाओं के बीच जो थिरता प्राप्त होती है, उसके अंतर को तू देख।

जिस पुस्तक में यह उपर्युक्त श्लोक दिया गया है, उसमें एक और श्लोक भी दिया है, जो व्यापार से उपरति का तात्पर्य स्पष्ट कर देता है। यथा—

निर्ममो निरहंकारो न किंचिदिति निश्चितः।
अंतर्गलितसर्वाशः कुर्वन्नपि करोति न॥
(अष्टावक्रगीता १७, १६)

अर्थ—जिस पुरुष ने मैं, मेरा, अर्थात् अहं-मम-भाव को दूर कर दिया है, जिसके चित्त में यह निश्चय जम गया है कि जो कुछ देखने-सुनने में आता है, केवल ख्याल ही ख्याल है। जिसके भीतर समस्त इच्छाएँ दूर और नष्ट हो चुकी हैं, वह

तत्त्वज्ञों की विवेचना ने यह बात आपत्ति की सीमा से बाहर पहुँचा दी है कि सांसारिक उन्नति struggle for existence (अस्तित्व के लिये युद्ध) और survival of the fittest (योग्यतम के लिये जीवित बचना) पर निर्भर है, जिसके ये अर्थ हैं कि evolution (विकास) के लिये न केवल घोर प्रयत्न ही करना, बल्कि संग्राम भी करना उचित है। लेकिन तुम्हारा कथन विज्ञान की इस तीव्र गति के भी विरुद्ध चलना चाहता है, उल्टी गंगा बहाना है।❀

राम – (१) हम तो कहते हैं कि वेदान्त संखिया ही खिलाता है, किंतु यह वह संखिया है, जो पाप-रूपी कुष्ठ (leprosy of sin) को दूर कर दे। यह वह विष है, जिसको खानेवाला शव (मुरदा) नहीं, बल्कि शिव-शंकर (नीलकंठ) बन जाता है। यह वह सुल्फा है, जिस पर संसार-भर की चुल्ली न्योछावर कर दी जाय। यदि किसी को वेदान्त जड़ता और आलस्य लानेवाला मालूम होता है, तो इसके ये अर्थ हैं कि चेतनघनरूपी वेदान्त का उसकी आँख के साथ वही संबंध है, जो विश्व-प्रकाशक सूर्य का विचरनेवाले निशाचरों की आँखों के साथ हुआ करता है, अर्थात् उन पशुओं को दृष्टि के साथ, जो अँधेरे के अभ्यासी हैं।—

> वफ़ूरे जलवा हम यक्सर हिजाबे-जलवा हस्त ईं जाँ ;
> नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरियानी।

अर्थ—सरासर तेज के प्रकाश की अधिकता ही यहाँ तेज का आवरण है। सिवा तूफ़ान की उरयानी (नंगापन) के नदी को कोई परदा नहीं, अर्थात् नदी को तरंगों का उठना ही

❀ उनर भुजंह कि अंग, भगा तरंग'-नामक
।१०।।

दर्शन तो करो, फिर देखते हैं तुम्हारे आक्षेप कहाँ जाते ? यह वह व्यक्ति है, जिसके तेजोमय मस्तक पर चंद्रमा की तरह प्रकाशमान अक्षरों में यह लिखा है—'हाँ, इसका पूजन करो !' वही तद्वनं (विश्व का उपास्य) है ! (केनोपनिषद्)

मनअम कुनी ज़ि इश्क़े-वे ऐ मुफ़्ती-ए-ज़माँ !
माज़ूर दारमत कि तू ओ रा न दीदई ॥

अर्थ—ऐ संसार के क़ाज़ी (न्याय चुकानेवाले), उस (परमेश्वर) के प्रेम से तू मुझको मना करता है। जा, मैं तुझको क्षमा करता हूँ, क्योंकि तूने उस (परमात्मा) को देखा नहीं है।

दिल टेर बुख़ारों के लगाता है फ़क़्र में।
उड़ जाते हैं ख़ुरशेद सा जब मह नज़र आया ॥

(२) क्या सचमुच ड्यूटी (कर्त्तव्य) इस बात की इच्छुक हुआ करती है कि हमारा चित्त विक्षिप्त या दौड़-धूप में हो ?

जहाँ तक राम का ख़याल है, कदापि नहीं । हाँ, यह प्रायः देखा गया है कि जब स्त्रियाँ या मर्द लड़-झगड़ रहे हों, और चाहे किसी पक्ष से, झगड़े या क्रोध का कारण पूछा जाय, तो यही उत्तर मिलेगा कि 'विरोधी पक्ष ने ऐसा क्यों किया ?' या 'वैसा क्यों न किया ?' जिससे स्पष्ट पाया जाता है कि क्रोध और शोक का कारण 'अपने मन से दोष का उत्पन्न हो जाना' तो बहुत कम ही होता है। हाँ, यदि दूसरों की ओर कर्त्तव्य के पूरा करने में कोताही (कमी) हो जाय, तो झटपट क्रोध की ज्वाला भड़क उठती है। अत: कैसी हँसी की बात है कि अपना कर्त्तव्य तो नहीं, औरों का कर्त्तव्य तुनक-मिज़ाज लोगों को शोक और चिंता के कूप में डाले।

बरो बकारे-ख़ुद ऐ वाइज़ ! ई चिह फ़र्याद अस्त ।
मरा फ़ताद दिल अज़ कफ़ तरा चिह उफ़्ताद अस्त ॥

वीर है; वह वास्तव में कुछ भी नहीं करता, चाहे प्रत्यक्ष में वह काम करता भी दिखाई दे।

मज़दूर (कुली) बेचारा दिन-भर बाज़ारों में पत्थर कूटता या और किसी प्रकार की कड़ी मिहनत करता है, और मारे मिहनत के शरीर को पसीना-पसीना करके अपना बसर (गुज़रान) करता है, बड़ा काम करनेवाला है। ऊँचा हाकिम न सड़क पर रोड़ी कूटता है, न यात्रियों का असबाब उठाता है, न खेत में जाकर हल चलाता है, न कोई और शारीरिक कष्ट सहन करता है, केवल ज़बान हिला देता है, वह बिलकुल निकम्मा और सुस्त है।

पाठकगण! जैसे यह तर्क निस्सार है, वैसे ही वेदान्त-निष्ठ ज्ञानवान को औरों की भाँति बात-बात पर निराश और व्याकुल होते न देखकर या शरीर की दृष्टि से चुप और बेकार रहते देखकर यह कहना कि वेदांत निकम्मा और सुस्त कर देता है, सरासर निरर्थक है। ज्यों-ज्यों पद उच्च होता जाता है, स्थूल इंद्रियों से काम लेना कम होता जाता है। ऊँचा हाकिम मज़दूर की तरह हाथ-पैर नहीं हिलाता; केवल ज़बान (अर्थात् सूक्ष्म इंद्रियाँ) हिलाता है; किंतु उसकी आज्ञाएँ सहस्रों मज़दूरों को दौड़-धूप में डाल देती हैं। इसी प्रकार सच्चा महात्मा सर्वज्ञ (मेस्मरिज़्म की जान, मैग्निटिज़्म के प्राण, और लोकों के कोई) जिसके 'ख़याल ही' में संसार स्थिर है, सांसारिक चिन्ताओं का बोझ उठाना तो कहाँ चाहे ज़बान भी न हिलाए, उपदेश भी न करे किंतु उसका मनसंकल्प (भीतरी आशा) ही सैकड़ों [illegible] ज़बानों और शरीरों को [illegible] आलसी' कहे [illegible] और शक्ति [illegible] अद्वैतनिष्ठ महात्मा

तुम्हारे लिये अयुक्त हैं। उनका अनुसरण करना तुम्हारा धर्म नहीं है। सिंह बनो, और ऐसे जुए को देखते ही सिर से उतार दो। इस बात की ज़रा परवाह न करो कि वर्षों से यह रीति चली आती है।)

योरप और एशिया में शिक्षक (उस्ताद) लोगों का कई शताब्दियों तक यह ख्याल रहा कि कर्त्तव्य की दृष्टि से बच्चों के भीतर शिक्षा ठूसने के लिये बिना रोक-टोक उनकी खाल उधेड़ना आवश्यक है। बेंत को बचाकर रखना बच्चे को बिगाड़ना है। "If you spare the rod, you spoil the child," किन्तु आज पूर्ण रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसा ख्याल बिलकुल ग़लत (अयुक्त) था। बच्चों को, चाहे बूढ़ों को यदि हम लाभ पहुँचा सकते हैं, तो क्रोध से नहीं, प्रेम ही से पहुँचा सकते हैं। शिक्षा और शिक्षा की पद्धति में Sacrament of the rod (कोड़ों के शासन) के स्थान पर Sacrament of love (प्रेम-शासन) लाने की तज्वीज़ें हो रही हैं। बच्चों के लिये Kindergarten (बाल-वाटिका) कई स्थानों पर प्रचलित हो गया है, और शेष स्थानों पर धीरे-धीरे चल जायगा।

इतिहास साक्षी देता है कि तरह-तरह की रस्में और रिवाज पृथ्वीतल पर जल-बुदबुद की भाँति आते रहते हैं और फिर मिट जाते हैं। एक दिन था, जब दासों का रखना सर्वत्र आवश्यक समझा जाता था। अब इसको [illegible] प्रथा ही नहीं, बल्कि पाप समझकर दूर किया गया है। इसी प्रकार सती होना [illegible] अब निषिद्ध है।

भाग—जा, ऐ उपदेशक ! अपना काम कर । यह क्या कोलाहल है ? मेरा हृदय (अपने प्यारे के प्रेम में) हाथ से निकल गया है । भला तेरा इसमें क्या गया है ?

> गर हमने दिल सनम को दिया फिर किसी को क्या !
> इस्लाम छोड़ कुफ़्र लिया फिर किसी को क्या !
> हमने तो अपना आप गरेबाँ किया है चाक।
> आप ही सिया सिया न सिया फिर किसी को क्या !

"नहीं महाशय ! कुछ अवसरों पर अपनी ड्यूटी भी विवश करती है कि हम भौंहें चढ़ाएँ, आँखें दिखाएँ और धमकी से डराएँ ।" राम का इसमें यह कहना है कि 'शांति से काम लेना और चित्त पर सवार रहना' क्या यह स्वयं तुम्हारा प्रथम कर्तव्य नहीं ? यदि लड़ाई (परीक्षा) के अवसर पर हथियार से काम न लिया, तो उसका लाभ ही क्या ? यदि क्रोध और मद उत्पन्न करनेवाले समयों पर शांति को न बर्ता, तो इस अस्त्र (शांति) को बर्तना ही किस अवसर पर है ? साधारणतया तो प्रत्येक मनुष्य शांत रहता है, किंतु धर्मात्मा वही है, जो हृदय को हिला देनेवाले अवसरों पर चित्त को वश में रखे, क्रोध और जोश को प्रवेश न पाने दे ।

बाहर [illegible] हमको न आज़माना, या हो वैसा ही सादो-जामो-सुबा ।
जिसे नशा है [illegible] न रहे, जिस मैं से होश-सुधा न रहा ।

अब कोई सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक या धार्मिक कष्ट इस प्रकार का [illegible] आ जाता था और [illegible]
[illegible] आत था कि
[illegible] को तुम्हें
[illegible] तथा स्तुति
[illegible] (व सके
[illegible] रहती है,

तुम्हारे लिये अयुक्त हैं। उनका अनुसरण करना तुम्हारा धर्म नहीं है। सिंह बनो, और ऐसे जुए को देखकर सिर से उतार दो। इस बात की ज़रा परवाह न करो कि वर्षों से यह रीति चली आती है।)

योरप और एशिया में शिक्षक (उस्ताद) लोगों का कई शताब्दियों तक यह ख्याल रहा कि कर्त्तव्य की दृष्टि से बच्चों के भीतर शिक्षा ठूंसने के लिये बिना रोकटोक उनकी खाल उधेड़ना आवश्यक है। बेत का दबाकर रखना बच्चे को बिगाड़ना है। "If you spare the rod, you spoil the child." किन्तु आज पूर्ण रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसा ख्याल बिल्कुल बुरा (अयुक्त) था। बच्चों को, चाहे बूढ़ों को यदि हम लाभ पहुँचा सकते हैं, तो क्रोध से नहीं, प्रेम ही से पहुँचा सकते हैं। शिक्षा और शिक्षा की पद्धति में Sacrament of the rod (कोड़ों के शासन) के स्थान पर Sacrament of love (प्रेम-शासन) लाने की तदबीरें हो रही हैं। बच्चों के लिये Kindergarten (बाल-वाटिका) कई स्थानों पर प्रचलित हो गया है, और शेष स्थानों पर धीरे-धीरे चल जायगा।

इतिहास साक्षी देता है कि तरह-तरह की रस्में और रिवाज पृथ्वीतल पर जल-बुदबुद की भाँति आते रहते हैं और फिर मिट जाते हैं। एक दिन था, जब दासों का रखना सर्वत्र आवश्यक समझा जाता था, अब उसको सबसे बड़ी पतित प्रथा ही नहीं, वरन् पाप मानकर बंद किया गया है। इसी प्रकार सती होना, [illegible] अब निषिद्ध हैं।

जो स्थान उसके मन-प्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है। एक और श्रुति में आया है—

अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद । यथा पशुरेव ठं
स देवानाम् । (बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन वह (उपासक) उपास्य (देवताओं) के पशु की भाँति है।

इसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है—

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम् ।
न स वेद, नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः ॥

अर्थ—'मैं और हूँ और यह और है' यह ख्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्य बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है, मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी ड्यूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, दे चाबुक पर चाबुक जड़नी जायगी।

सन्ध्या-पूजा के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंधे नहीं छोड़ते, ड्यूटी बड़ी ज़बरदस्त है, आज नहाने के लिये टाइम (समय) नहीं मिला, ड्यूटी (कर्तव्य)'

अथ—हमारे छोटे-छोटे रिवाज अपने-अपने दिन (गुज़ारकर, अपना उदय-काल बिताकर) बीत जाते हैं। ये सब (हे सत्यस्वरूप!) तेरे ही टूटे-फूटे (तेज व मंद) प्रकाश हैं, और हे ईश्वर! तू उन सबसे महान् है।

परिवर्तनशील और नाशवान् सांसारिक रस्मों के वश में होकर सच्ची उन्नति को रोक देना, आत्मा को धब्बा लगाना, अपनी शान्ति ([illegible]) को क्षीण करना है, असली ब्रह्मचर्य को खोना है, और मनुष्य-देहरूपी चिन्तामणि से कौवे उड़ाने का काम लेना है।

पशुओं के व्यापारियों के यहाँ प्राय: यह प्रथा है कि एक बहुत मोटा और लंबा रस्सा फैलाकर उसके थोड़े-थोड़े अंतर पर छोटी-छोटी रस्सियाँ फंदों के रूप में गाँठ देते हैं, और छोटी रस्सी का एक फंदा एक पशु के गले में, दूसरा दूसरे पशु के गले में डाले चले जाते हैं, इत्यादि। इसी तरह कई पशु एक ही लंबे रस्से के साथ वश में रक्खे जाते हैं। ऋग्वेद की ऐतरेय आरण्यक में लिखा है

> तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचा तन्त्या।
> नामभिर्दामभिः सर्वं सितं सर्वं हीदं नामनीति॥ (२-१-६-१)

अर्थ (प्राण के हाथ में वाणी का लंबा रस्सा है और नाम फंदे हैं, अतः वाणी के रस्से और नाम के फंदों के साथ यह सब कुछ बँधा हुआ है, क्योंकि सब वस्तुएँ नाम ही नाम तो हैं।

अब कोई व्यक्ति अपना नाम पुकारा जाना सुनता है, तो [illegible] [illegible] के द्वारा परीक्षा [illegible]

[illegible]

जो स्थान उसके मन-प्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है। एक और श्रुति में आया है—

> अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद। यथा पशुरेव छ
>
> स देवानाम्। (बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन वह (उपासक) उपास्य (देवताओं) के पशु की भाँति है।

इसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है—

> अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम्।
>
> न स वेद, नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः॥

अर्थ—'मैं और हूँ और वह और है' यह ख्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्य बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है, मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी ड्यूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, दे चाबुक पर चाबुक पड़ने लगीं।

[illegible] के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंधे नहीं छोड़ने [illegible] बड़े [illegible] नहाने के लिये टाइम (समय) नहीं मिला, [illegible] ([illegible])।

अर्थ—हमारे छोटे-छोटे रिवाज अपने-अपने दिन गुजारकर (अपना उदय-काल बिताकर) बीत जाते हैं। ये सब (हे सत्यस्वरूप!) तेरे ही टूटे-फूटे (तेज व मंद) प्रकाश हैं, और हे ईश्वर! तू उन सबसे महान् है।

परिवर्तनशील और नाशवान् सांसारिक रस्मों के वश में होकर सभी उन्नति को रोक देना, आत्मा को धक्का लगाना, अपनी शक्तियों (energies) को क्षीण करना है, असली ब्रह्मचर्य को खोना है, और मनुष्य-देहरूपी चिंतामणि से कौवे उड़ाने का काम लेना है।

पशुओं के व्यापारियों के यहाँ प्रायः यह प्रथा है कि एक बहुत मोटा और लंबा रस्सा फैलाकर उसके थोड़े थोड़े अंतर पर छोटी-छोटी रस्सियाँ फंदों के रूप में गाँठ देते हैं, और छोटी रस्सी का एक फंदा एक पशु के गले में, दूसरा दूसरे पशु के गले में डालते चले जाते हैं, इत्यादि। इसी तरह कई पशु एक ही लंबे रस्से के साथ वश में रक्खे जाते हैं। ऋग्वेद की ऐतरेय आरण्यक में लिखा है—

> तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचा तन्त्या।
> नामभिर्दामभिः सर्वं सितं सर्वं हीदं नामनीति ॥ (२-१-६-१)

अर्थ—(प्राण के हाथ में) वाचा का लंबा रस्सा है और नाम फंदे हैं, अतः वाचा के रस्से और नाम के फंदों के साथ यह सब कुछ बँधा हुआ है, क्योंकि सब वस्तुएँ नाम ही नाम तो हैं।

जब कोई व्यक्ति अपना नाम पुकारा जाता सुनता है, तो झट-पट उधर को खींचा जाता है, मानो गले के फंदे के द्वारा घसीटा जा रहा है।

> [illegible] ।
> [illegible] ॥

अर्थ [illegible] रस्सा डाल दी है। अब

जो स्थान उसके मनःप्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है। एक और श्रुति में आया है—

> अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद । यथा पशुरेव ॅं
>
> स देवानाम् । (बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन वह (उपासक) उपास्य (देवताओं) के पशु की भाँति है।

इसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है—

> अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम् ।
>
> न स वेद, नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः ॥

अर्थ—'मैं और हूँ और यह और है' यह ख्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्य बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है, मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी डयूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, ये चाबुक पर चाबुक [illegible]

मन [illegible] के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंधे नहीं छोड़ [illegible] नहाने के लिये टाइम (समय [illegible]) [illegible]

अर्थ—हमारे छोटे-छोटे रिवाज अपने-अपने दिन गुजारकर (अपना उदय-काल बिताकर) चोल जाते हैं। ये सब (हे सत्यस्वरूप!) तेरे ही टूटे-फूटे (तेज व मंद) प्रकाश हैं, और ऐ ईश्वर! तू उन सबसे महान् है।

परिवर्तनशील और नाशवान् सांसारिक रस्मों के वश में होकर सच्ची उन्नति को रोक देना, आत्मा को धब्बा लगाना, अपनी शक्तियों (energies) को क्षीण करना है, असली ब्रह्मचर्य को खोना है, और मनुष्य-देहरूपी चिंतामणि से कौवे उड़ाने का काम लेना है।

पशुओं के व्यापारियों के यहाँ प्रायः यह प्रथा है कि एक बहुत मोटा और लंबा रस्सा फैलाकर उसके थोड़े-थोड़े अंतर पर छोटी-छोटी रस्सियाँ फंदों के रूप में गाँठ देते हैं, और छोटी रस्सी का एक फंदा एक पशु के गले में, दूसरा दूसरे पशु के गले में डालते चले जाते हैं, इत्यादि। इसी तरह कई पशु एक ही लंबे रस्से के साथ वश में रक्खे जाते हैं। ऋग्वेद की ऐतरेय आरण्यक में लिखा है—

> तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचा तन्त्या।
> नामभिर्दामभिः सर्वं सितं सर्वं ह्येदं नामानीति ॥ (२-१-६-१)

अर्थ—(प्राण के हाथ में) वाचा का लंबा रस्सा है और नाम फंदे हैं, अतः वाचा के रस्से और नाम के फंदों के साथ यह सब कुछ बँधा हुआ है, क्योंकि सब वस्तुएँ नाम ही नाम तो हैं।

जब कोई व्यक्ति अपना नाम पुकारा जाता सुनता है, तो झट-पट उधर को खींचा जाता है मानो गले के फंदे के द्वारा घसीटा जा रहा है।

> [illegible]
> [illegible]

अर्थ [illegible] की रस्सी डाल दी है। अब

जो स्थान उसके मनःप्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है। एक और श्रुति में आया है—

> अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद। यथा पशुरेव छं
> स देवानाम्। (बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन वह (उपासक) उपास्य (देवताओं) के पशु की भाँति है।

इसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है—

> अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम्।
> न स वेद, नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः॥

अर्थ—'मैं और हूँ और यह और है' यह ख्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्य बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है, मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी डूयूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, हे चाबुक पर चाबुक पड़ने जायगी।

[illegible] के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंधे नहीं छोड़ने [illegible] है [illegible] नहाने के लिये टाइम (समय) नहीं मिला, क्या है (इत्यादि)

चाह चमारी चूहरी, अति नीचन की नीच ।
तू तो पूर्ण ब्रह्म है, जे चाह न होवे बीच ॥

समस्त बाहरी कर्त्तव्य तेरी ही चाह पर ठहरे हुए हैं। यह चाह वह पुंश्चली (फाहिशा) महिला है कि नर-देह को अपना भोगांग बनाकर कभी कहीं कुकर्म कराती है, कभी कहीं। यह चाह ही योनियों के कूप में गिराती है।

ऐ प्यारे! यदि तेरी कोई ड्यूटी है, यदि तुझको कुछ करना चाहिए, तो वह यह है कि इस "चाहिए" से पीछा छुड़ा, इस चाह के धब्बे को मिटा, तुझे कुछ नहीं चाहिए। तेरी क़सम, तू तो नित्य तृप्त है। भ्रांति में पड़कर दीन और दरिद्री क्यों बन रहा है? यदि तेरा कोई कर्त्तव्य है, तो यह है कि अपने दबे हुए कोष को निकाल और अपनी शाहंशाही को सँभाल। शेष सब कर्त्तव्य तेरे माने हुए कर्त्तव्य हैं।

चाह गयी, चिंता गई, मनवा बेपरवाह ।
जिनको कछु न चाहिए, सो शाहनपति शाह ॥

संसार की आँख में चाहे राजा या सितारे-हिंद कहाओ, किंतु जब तक इच्छाओं के मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े तुम्हारे नहीं उतरे, और चिंताओं के सूखे टुकड़े तुम्हारे पेट में पेचिश डाल रहे हैं; जब तक तुमने स्वराज्य (आत्मराज्य) को नहीं सँभाला, और कामनाओं के दास बने हुए हो; तब तक तुम प्रतिष्ठा-संपन्न काहे के? कामनाओं को छोड़ने से यह अभिप्राय नहीं कि मुर्दे की भाँति निश्चेष्ट और गतिशून्य हो जाओ, वरन इसका यह अर्थ है कि विश्व-वाटिका में एक सामान्य मजदूर बनकर जीवन किरकिरा करने के स्थान पर अपने मन के [illegible] और [illegible] के साथ सैर करो। इस प्रकार जो काम तुम्हारे [illegible] [illegible] जायगा, आनंद से भरा हुआ ([illegible]) होगा, सुलतान अपनी (पलक) के संकेत से

द्ध का कुद्ध कर सकता है, पर भयभीत दीन दास से तो क्या
न पड़ता है।

संसार के और सब विषय तुम्हारे ऐच्छिक (optional)
, यदि कोई अनिवार्य (compulsory) विषय है, तो सब
च्छाओं को मिटानेवाली ब्रह्म-विद्या का प्राप्त करना है।
त्रिगुणानंदित (thrice blessed) ! तेरे ही लिये वेद
लिखा है—

पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

(ऋग्वेद मं० १०, सूक्त ९०)

अर्थ—"तीन भाग इसके आनन्दमय अविनाशी स्वर्ग में हैं
और केवल एक भाग संसार में।" फिर संसार की चिंता में
क्यों पच रहा है?—

I searched through strange pathways and winding
For truths that should lead me to God
But further away seemed the finding
with every new by-road I trod
I searched after wisdom and knowledge
They fled me the fiercer I sought
For teachers, text-books and College
Gave only confusion of the thought
[illegible] ence was speaking
[illegible]

[illegible]

मैंने बुद्धिमत्ता और विद्या की खोज की, परन्तु जितने अधिक खोज की, उतने ही ये मुझसे दूर भागे, और गुरु किताबों और विद्यालयों ने मेरे विचारों को उल्टा गड़बड़ दिया। मैं (थककर) बैठ गया। इस तरह से जब निस्तब्ध की दशा विद्यमान थी और संयोगतः अपने भीतर ध्यान कि तो इस अंतर्दृष्टि से मुझे यह सब कुछ मिल गया, जिसकी खोज में था और मेरी आत्मा ने सबको व्याप्त कर लिया।

यल्लाभान्नापरो लाभः यत्सुखान्नापरं सुखं।

यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥ (उपनिषद्)

तात्पर्य—एक ब्रह्म से बढ़कर कोई वस्तु प्राप्त करने यो नहीं है, और सिवा इसके कोई वस्तु आनन्द देने योग्य न है, कोई वस्तु जानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही होता है।

मुंडकोपनिषद् के आरंभ में है—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अर्थ—ब्रह्मा देवताओं में सबसे प्रथम हुआ। संसार के उत्पन्न करनेवाला और लोक को पालनेवाला। इसने अपने सबसे बड़े पुत्र अथर्व को ब्रह्म-विद्या दी, जिस विद्या पर समस्त लोक स्थिर हैं।

राजाओं के यहाँ यह परिपाटी चली आई है कि सबसे बड़े पुत्र को राजतिलक, भूमि, धन और रत्नादि देते हैं। ब्रह्मा को अथर्व ऋषि के तई पैत्रिक स्वत्व देने की क्या सूझी? इससे मालूम होता है कि ब्रह्मा दरिद्री होगा। हाय! ब्रह्मा को तो समस्त पृथ्वी का रचनहार और स्वामी लिखा है, इंद्र आदि समस्त देवताओं में उत्तम बतलाया है। वह दरिद्री किस प्रकार था? न तो ब्रह्मा निर्धन हो था और न ब्रह्मा को किसी का भय

ही था और न ब्रह्म अनजान ही था। जिसने समस्त प्राणियों को उत्पन्न किया, वह प्रत्येक वस्तु के गुण और मूल्य से अवश्य जानकार था, प्रत्येक वस्तु के तत्त्व से अवश्य परिचित था। उसने समझ-बूझकर समस्त वस्तुओं में सबसे अधिक मूल्यवान् अर्थात् अमूल्य रत्न अपने हृदय-खंड को दिया। नहीं-नहीं, उसने अपनी समस्त संपत्ति (स्थावर-जंगम) की कुंजी या कागज़ (ब्रह्मविद्या) अपने सच्चे उत्तराधिकारी को सौंपकर उसे अपना मुकुट-सिंहासन सौंपा। उसे अपनी पदवी देकर इंद्र आदि अधीन महाराजों का शासक बनाया।

तं यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहंति।

(कृष्णयजुर्वेद)

अर्थ—जो कोई उसे जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सब देवता उस व्यक्ति को बलि देते हैं।

ऐ वशिष्ठ, अत्रेय, भरद्वाज जैसे ऋषियों से अपना गोत्र मिलानेवालो! ऐ राम, कृष्ण, बुद्ध और शंकर के देश में रहनेवालो! तुम कल के नातजुर्बेकार बच्चों का अनुकरण करते हो, जिन्होंने आत्मिक उन्नति का अभी मुँह नहीं देखा। उतारो पैरों से बूट और सिर से टोपी, और बीच बज़ार ईंधन का गट्ठा उठाकर आँसुओं की ओस से भरी हुई आँखों के दो कमल लो भेंट करने को, और किसी वेदवित् पूर्ण ज्ञानी के चरणों में दंड की भाँति जा गिरो। केवल इसी में तुम्हारा कल्याण है; केवल इसी भाँति तुम्हारा जाड़ा (पाला) उतरेगा; केवल इसी तरह तुम्हारे दुःखों की रात कटेगी; केवल इसी तरह तुम्हारी भूख दूर होगी; केवल इसी तरह तुम्हारे पाप जलेंगे; केवल इसी में तुम्हारी प्रतिष्ठा (सम्मान) और गौरव है।

[illegible] दर्दे-[illegible] [illegible] [illegible] पाए।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अर्थ– सूर्य प्रतिष्ठा (सम्मान) की उच्चता पर होते हुए भी उस पूर्ण ज्ञानी के चरणों पर अपना मस्तक रखता है, अर्थात् सबका शिरोमणि होने पर भी सूर्य उस पूर्ण ज्ञानी के चरण चूमता है। और जो तुच्छ होते हुए उस ज्ञानी के समक्ष (अभिमान से) बैठता है, उससे कहो कि हमारे आश्रम से वापस लौट जाय, अर्थात् जो पूर्ण ज्ञानी के समक्ष तुच्छ होकर दीनता-पूर्वक नहीं झुकता, वह ईश्वर के पवित्र देश में स्थान पाने योग्य नहीं।

> घोले जिन्हाँ दे रखड़े कंत तिन्हाँ न दे पास।
>
> धूल तिन्हाँ दी जे मिले नानक दी अरदास॥

यह भी सच है कि कभी-कभी वेदांत जब किसी जिगर में घर कर बैठता है, तो संसार के काम का नहीं छोड़ता, कर्त्तव्य कर्मों को फीका बना देता है, सांसारिक संबंधों को ढीला कर देता है, इंद्रियों का विलास-सुख उड़ा देता है, 'मेरा-तेरा' की क़ैद मिटा देता है, घर का छोड़ता है, न घाट का, गो मालिक-मलिका लाट का।

> धूलि जैसा धन जाको, शूली सा संसार-सुख,
>
> भूमि जैसो भाग दीखै, अंतक सी यारी है;
>
> पाप जैसी प्रभुताई, शाप जैसो सम्मान,
>
> बड़ाई बिच्छून जैसी, नागिनी सी नारी है।
>
> अग्नि जैसा इंद्रलोक, विघ्न जैसा विधिलोक,
>
> कीर्ति कलंक जैसी सिद्धि सी ठगारी है;
>
> वासना न कोई बाकी, ऐसी मति सदा जाकी,
>
> सुंदर कहत ताको वंदना हमारी है।

> वाह [illegible] मौज फ़क़ीरां दी।
>
> कभी चबावें चना-चबेना, कभी लपट लैं खीरां दी।
>
> कभी तो [illegible] शाल दुशाला कभी गुदड़ियां लीरां दी॥

दर दरे - मैकदह रिंदाने - क़लंदर बाशन्द।
कि सतानंदो दिहद अफ़सरे - शाहंशाही॥

अर्थ—पानगृह (शराबख़ाना) के द्वार पर क़लंदर रिंद
हैं, अर्थात् सच्चे प्रेम का आनंद लेनेवाले परमहंस मस्त साधु
हैं, जो कि साम्राज्य (मुकुट और सिंहासन) का लेन
करते हैं।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ (गीता ३-१७)

अर्थ—जिनका आत्मा ही से प्रेम है, आत्मा ही से जि
तृष्णा दूर होती है, आत्मा ही में जिनको संतोष है, उनके
कहीं का काम और कैसे धंधे ?

जिस नींनीं इश्क़ नमाज़, वह कोई पढ़े पढ़ावेगा।

अर्थात् प्रेम ही जिसकी सन्ध्या है, वह क्या पढ़े
पढ़ावेगा।

हर कि मायव शवद अज़ बादा-ए-इरफ़ाँ सरमस्त।
हमचू ख़ुरशेद दरीं दायरा तनहा गरदद॥

अर्थ—ऐ महाराय ! जो कोई ज्ञान के मद से उन्मत्त हो
है, वह सूर्य की तरह इस परिधि (वृत्त) में अकेला मस्त
फिरता है।

इक मन था संग गया श्याम क, कौन भजे जगदीश।
कथोजी मन न भये दस बीस।

बहरेस्त बहरे-इश्क़ कि हेचश किनारा नेस्त।
इंजा जुज़ ई कि सर बसपारन्द चारा नेस्त॥

अर्थ—प्रेम का समुद्र ऐसा है कि उसका कोई कि
(सीमा) नहीं यहाँ (प्रेम के स्थान पर) सिवा इसके कि
र दे और कोई [illegible]

[illegible] सोजोयक बर्ज

अर्थ—यदि पैरा की इस सन्दे पागलपन तक पहुँच हो जाय, तो पैवारू के कार्यालय को रक्त से यह धो दे।

रद रद ये इश्क मारवाई। बदी बिरहूँ पार उतारवाई॥

पेदांत नवयुवकों के श्वेत वस्त्र उतारकर लाल कफनी पहनाता है, उनकी स्त्रियों की आँखों के सुरमे को गरम-गरम आँसुओं में बहाता है, उनके बूढ़े माता-पिताओं को आठ-आठ आँसू रुलाता है।

नी सईयो ! मैं कतदी कतदी हुटी।

पई पच्छी पिछवाड़े रह गई, हथ गैरिवों तन्द हुटी॥

नयाँ वरदियाँ विच्चों दुकदी लाठी, पाम मरेंदा मुई।

माल सलारी सर गए सारे, बीटी रही न मुई॥

भला होया मेरा चर्खा टुटदा, जिंद अजावों छुटी।

गहने गवाए, हुई वे जिकरी, मक्कों सारों मुई॥

किंतु ऐ क्षणिक सुखवाले पोलो के गेंद ! सत्यस्वरूप सूर्य के आकर्षण की दशा तुझे क्या मालूम। यहाँ बुरे-भले का विधान मत कर।

ऐ तुरा ख़ारे-बपा नशकस्ता के दानी कि चीस्त ?

हाले-शेराने कि शमशीरे-बला बर सर खुरंद।

अर्थ—ऐ प्यारे ! जब तेरे पग में एक काँटा नहीं टूटा है (नहीं चुभा है), तो तू उन नरसिंहों की अवस्था, जो विपत्तियों की कृपाण अपने सिर पर खाते हैं, क्या जान सकता है कि क्या है ?

तरसम कि सर्फ़ए-न बुरद रोज़े बाज़ पुर्स।

नाने हलाले शैख़ ज़ि आबे-हराम-मा॥

अर्थ मैं डरता हूँ कि प्रलय के दिन शेख की हलाल (विहित) रोटी हमारे हराम (निषिद्ध) जल (मद्य) से आगे न बढ़ जाय।

(कविवर हाफ़िज़ के इस शेर का तात्पर्य यह है कि धर्मशास्त्र

के अनुकूल आचरण करनेवाले कर्मकाण्डी लोग सच्चे पुरुष अर्थात् सच्चे प्रेमियों से कहीं आगे न बढ़ जायें।)

उनको कौन बुरा कह सकता है, जिनके लिये—

> सूझे नहीं दिन रात तेरे ध्यान में प्यारे!
> अपनी तो सहर है यही और शाम यही है॥

> त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव॥
> त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अर्थ—हे ईश्वर! आप ही मेरी माता, पिता, संबंधी और मित्र हो, और हे देवों के देव! आप ही विद्या, धन और मेरे सब कुछ हो।

> किश्वरे-दिल बतो दादम कि तुई-हाकिमे-ओ।
> हाकिमे-जुज़ तो दरी किश्वर अगर हस्त बिगो॥

अर्थ हृदय-आकाश मैंने तुझको सौंप दिया, क्योंकि तू ही उसका शासक है, इसमें तेरे सिवा यदि कोई और शासक हो, तो बतला।

क्या उन पर कर्तव्य-पालन में कमी का लांछन लग सकता है कि जो संसार की ओर से एक प्रकार "ऐ जवानी की मृत्यु, वाह वा, तुझे स्वागत हो" कहते हुए युवा-मृत्यु का शरबत पी गए। यह स्त्री और माता-पिता अपने भाग्य (बख्तो रोज़गार) से और क्या चाहते हैं, जिनका प्यारा ज्ञान-अग्नि में स्वाहा हो गया।

> यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके
> ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति। (केन उप०)

अर्थ—जिसने ब्रह्म को पूरा-पूरा जान लिया, उसके समस्त लाञ्छन और पाप कट जाते हैं, वह अनन्त आनन्दघन और परम स्वरूप में जमकर रहता है, जमकर रहता है।

आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति। स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः। स स्वराड् भवति।

(सामवेद छांदोग्योपनिषद्)

अर्थ—निःसन्देह आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दक्षिण में है, आत्मा ही उत्तर में है, आत्मा ही यह सब कुछ है। वह जो यही देखता है, यही जानता है, यही सोचता है, उसका प्यार है तो आत्मा से, उसका खेल है तो आत्मा से, उसका घुटकर मिलना (हमबग़ल होना) है तो आत्मा से, उसकी प्राणविश्रांति है, तो आत्मा से, वही उस तेजस्वरूप को पाता है।

बैठत रामहि, ऊठत रामहि, बोलत रामहि, राम रह्यो है।
खावत रामहि, पीवत रामहि, धामहि रामहि, राम गह्यो है॥
जागत रामहि, सोवत रामहि, जोवत रामहि, राम लह्यो है।
देवहु रामहि, लेवहु रामहि, सुंदर रामहि, राम रह्यो है॥

करें हम किसकी पूजा और लगाएँ किसके चंदन हम।
सनम हम, दैर हम, बुतख़ाना हम, बुत हम, बिरहमन हम॥

गह अज़ ज़ुल्फ़त परेशानम, गह अज़ रूए-तो हैरानम।
हमीं कुफ़्रस्तो ईमानम, हमीं लैलो निहारे-मन॥

अर्थ—कभी मैं तेरी ज़ुल्फ़ (माया) से व्याकुल होता हूँ, कभी तेरा (स्वरूप) देखकर आश्चर्यान्वित होता हूँ, यही मेरा कुफ़र और ईमान है, और यही मेरी रात और दिन है।

तेरा जन राम रसायन माता।
प्रेम रसायन जाको उपज्यो, छोड़ न कितहूँ जाना।
उठत हर-हर, बैठत हर-हर, हर-हर भोजन खाना॥
अठसठ तीरथ मज्जन कीन साधु धूरि नहाना।
सफल जन्म हरजन का उपज्यो जिन कीना सौन विधाता॥

बहुत शीघ्र कल्याण हुआ, उनको महाराज ने बहुत शीघ्र मुक्ति प्रदान की।

ऐ प्यारो! वह नारायण-रूप महात्मा भगवान् का अवतार ही है, जो अपने अस्तित्व से शत्रुता, डाह, ईर्षा-द्वेष रखनेवालों का मन-प्राण से भला चाहता है; उनकी सेवा में अपना प्यारा से प्यारा धन उपस्थित करने को प्रस्तुत रहता है। जिसके रोम-रोम से प्रेम टपक रहा है, जिसकी आँखों से आनंद बरस रहा है, जिसके मस्तक पर शांति का चाँद चमक रहा है, ऐसे महा-पुरुष की ओर से वेदांत पहाड़ जितने क्रोध और आँधी की सी शत्रुता को चैलेंज करता है। उसके दर्शनों ही से क्रोध का पहाड़ और शोक की अँधेरी का नाम शेष रह जाय, तो सही, पता मिल जाय, तो कहना।

आफ़्ताबे-आफ़ताब अज़ दिलबरे-मा ग़ाफ़िलंद।
अय नसीहतगो, ख़ुदारा रौ बबीनो-रौ बबीं॥

अर्थ—सूर्योपासक हमारे प्यारे (सच्चे मित्र) से अचेत (बेखबर) हैं, ऐ उपदेश करनेवाले! ईश्वर के लिये जा और देख, जा और देख।

ब्रह्मविद्या वह जादू-मंत्र है कि काली रंगत, ठिंगने क़द और टेढ़ी टाँग में इस आश्चर्य का रूप-लावण्य भर देती है, जिससे संसार-भर के ऊँचे क़दवाले अत्यन्त सुन्दर स्वरूप हज़ार-हज़ार वर्ष तक यमपुरी पर साँपों की तरह खिंचे हुए जान दे देने को एक गड़रिए [illegible] Shepherd) के देश में दौड़े जाते हैं। हाय गड़रिया!

[illegible] ॥

अर्थ [illegible] वह सदैव [illegible]

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरित वेणुना सुष्ठुचुंबितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीरण: तेऽधरामृतम् ॥

अर्थ—आनंद और प्रसन्नता का बढ़ानेवाला, शोक को दूर करनेवाला, धीमी स्वरवाली बाँसुरी से सुशोभित और अन्य सांसारिक भोगों को भुला देनेवाला (प्यारे श्रीकृष्ण का) ज्ञानोपदेश रूपी अमृत सत्य के जिज्ञासुओं को मुक्ति रूपी दान देने की शक्ति रखता है।

हाय गोलचंद! मेरे लाल! तू गोबर-मिट्टी (सांसारिक इच्छाओं) में क्यों हाथ लिप्त कर रहा है? यह खेल अच्छा नहीं, मक्खन-जैसा शरीर तुमने मैला क्यों कर लिया? गोबर-मिट्टी में तो बिच्छू (दुःख) होते हैं, कहीं काट खाएँगे, फिर होंठ बिसूर-बिसूर कर रोना आरंभ करोगे। तुम्हारा रोना तुम्हारा राम नहीं सह सकता। मेरे नन्हे! आओ तुम्हें नहलाऊँ, धुलाऊँ, दूध पिलाऊँ, तुम गड़रिये तो नहीं, तुम तो द्वारिकाधीश (जल-थल के स्वामी) हो, छत्र-सिंहासन के अधिकारी हो, छोड़ो गंवारपन।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सुलह कि जंग ? गंगा-तरंग

(रिसाला कलिक नं० ७ से १२)

(१) अब हम अपने प्यारे की तीसरी आपत्ति की ओर (जो पूर्व पृष्ठ २१५-१६ में की गई है) आते हैं कि "डारविन के विकास-वाद के मतानुसार शांति और सुलह नाजायज (अयुक्त) है, और उन्नति के लिये लाठी के बल से भैंस ले जाना आवश्यक है। समस्त प्राणिवर्ग और वनस्पतिवर्ग आदि में भी यही नियम प्रचलित है। जो नियम कि सृष्टि के अन्य विभागों में प्रचलित हो, उससे मनुष्य का भागना अनुचित है।"

राम—इवोल्यूशन (विकासवाद) के नियम जो डारविन और उसके अनुयायी विज्ञानविदों ने बताए हैं, यदि वे पशु आदि के लिये सच हों, तो भी, ऐ समस्त सृष्टि में श्रेष्ठ प्राणि! तुझे कदापि-कदापि शोभित नहीं है कि तू वन्य पशुओं की सेवा में घुटने टेककर पाठ पढ़े और उनसे यह उपदेश सीखे कि स्वार्थ-परता से उत्तेजित (संतप्त) होकर दुर्बलों का रक्त पीना ही प्रकृति के नियमों का अनुसरण है, तीसमारखाँ बनकर सांसारिक मनोरथरूपी शव का आहार करना भलाई है, और मुरदार [illegible] सीखना ही ईश्वर-पूजा या भगवत्-आराधन है।

[illegible] तुम निर्विचन हो चुके हो ([illegible])

[illegible] और [illegible] का युग ([illegible])

[illegible] और दोनों

का [illegible] तुम [illegible] का

समय नहीं [illegible] तुम [illegible]) को

तरह सूर्य, चंद्रमा और सब नक्षत्रों को इस छोटे से शरीर (जगत्) के गिर्द मत घुमाओ। स्वार्थपरता से बाज आओ (विरत हो), वरन इस शरीर-भूमि को परमार्थ के सूर्य पर न्योछावर कर दो, वार के फेंक दो।

यदि उन्नति नर-भक्षण ही पर अवलंबित है, तो मनुष्यता ऐसी उन्नति से बाज आई। हरबर्ट स्पेंसर जैसे निस्संदिग्ध, विकासवाद के पक्षपाती ने भी अपने Data of Ethics (आचार-शास्त्र की पुस्तक) में स्वीकार किया है कि "यद्यपि बुद्धि-हीन सृष्टि के लिये स्वार्थपरता और युद्ध-विग्रह ही क्रमशः उन्नति का कारण रहेंगे, किंतु मनुष्य के लिये सहानुभूति, शुभेच्छा और स्वार्थ-त्याग (self-denial) भी उच्च पद पर पहुँचानेवाले या उन्नति दिलानेवाले हैं।" प्रोफेसर हक्सले (विज्ञान के दीप्तिमान सूर्य) ने किस उत्तम वाणी के साथ अपने Evolution and Ethics (विकासवाद और आचार-शास्त्र) के पृष्ठ ८१-८२ में प्रकाशित किया है कि "आचार-सम्बन्धी उत्तमताएँ उन सिद्धांतों की विरोधिनी हैं, जो संसार के 'जीवन-संग्राम' में कृतकार्यता (सफलता) के साधन हैं। निर्दयी, स्वार्थपरायणता और वृथाभिमान के स्थान पर आचार-शास्त्र स्वार्थ-त्याग सिखाता है। सब विरोधियों, प्रतिपक्षियों या प्रतिद्वंद्वियों और सहगामियों को ढकेल देने या पैरों तले रौंदने के स्थान पर आचार-शास्त्र सबकी सेवा करने की आज्ञा देता है। भलाई इस बात की इच्छुक नहीं कि जो योग्यतम हो, केवल उसी का डंका पीटा जाय ( ), वरन इस बात की इच्छुक है कि यथाशक्य योग्य पुरुषों की संख्या बढ़ाने का प्रयन्त किया जाय ( )।

आचार-शास्त्र के वश। मल्लकारक जीवन

के प्रश्न का खंडन है। आचार-शास्त्र के नियम और शिक्षा इस आशय पर निर्भर हैं कि लड़ाई-झगड़े की सार्वजनिक प्रवृत्ति अथवा व्यक्तिगत प्राकृतिक इच्छा को रोकें, इत्यादि।"

नोट—यदि आचार-शास्त्र के नियम और शिक्षा समष्टि या व्यष्टि संघर्ष (Cosmical or Competitive Process) को रोकने के लिये हैं, तो वेदांत इसकी जड़ काटने के लिये है। आचार-शास्त्र का तो इतना ही अनुशासन है कि "Love your neighbour as yourself, अपने पड़ोसी से अपने बराबर प्रीति करो।" वेदांत का यह ढिंढोरा है—"He is your Self—अपने बराबर तो क्या, वह तुम्हीं हो।"

मन इमानम, मन इमानम, मन हमाँ।
हर कुजा चश्मत फ़ितद जुज़ मन मदाँ॥

अर्थ—मैं वही हूँ, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ। जिस जगह तेरी आँख पड़े, उसको तू मेरे अतिरिक्त मत जान।

भगवान् बुद्ध ने एक राजा को हरिन पकड़े हुए देखा। इधर निर्दोष मृग की भयातुर सूरत (आकृति), उधर चमकता हुआ अचूक फर्सा दिखाई पड़ने की देर थी कि भगवान् बुद्ध मारे सच्ची पीड़ा के राजा के सम्मुख चित गिर पड़े, और मर्मस्पर्शी द्रवीभूत चित्त के साथ राजा से प्रार्थना की कि "आप निस्संदेह मेरा शरीर फर्से के अर्पण कर दीजिए, किंतु इस मतवाली (मदभरी) आँखोंवाले मृग को पीड़ा पहुँचाने से हट जाइए। मुझे अपने शरीर से प्रीति नहीं, किंतु इस बेचारे मृग को जीवन बहुत प्यारा है।"

पाठक आप विचार कर सकते हैं, ऐसे अवसर पर राजा साहब का पाषाण-हृदय अङ्गारा बनकर कहाँ उड़ गया होगा। इ[illegible] वाक्य ने राजा के वहशत[illegible] ([illegible]) या भयानक [illegible] पर किस प्रलय-[illegible] का [illegible] चला दिया

होगा। बुद्ध के आत्म-समर्पण ने राजा के हिंसक हृदय को कितना अधिक विदीर्ण किया होगा! हजारों वर्ष बीत गए कि यह बुद्ध जो हरिन के हेतु प्राण देने को तत्पर था, आज तक करोड़ों मनुष्यों पर राज कर रहा है। वह ईसा जिसका कथन है कि "एक गाल पर कोई तमाचा मारे, तो दूसरा गाल उसके आगे कर दो" वह ईसा देशों के देश अधिकार में ले आया। क्या हिंदुओं को विकास-सिद्धांत (या परिणामवाद) का ज्ञान न था?

प्रोफ़ेसर हक्सले ने स्वीकार किया है—

To say nothing of Indian Sages, to whom Evolution was familiar notion, ages before Paul of Tarsus was born

अर्थ—भारतवर्ष के ऋषियों का तो क्या कहना है, जो टार्सस के निवासी पाल के उत्पन्न होने से बहुत काल पूर्व विकास के सिद्धांतों से भली भाँति परिचित थे।

श्रीरामानुजाचार्य ने अत्यंत योग्यता-पूर्वक इस सिद्धांत को सिद्ध किया है। सांख्य के कर्त्ता ने भी सांसारिक विकास को सविवरण दिखाया है—

निमित्तं अप्रयोजकं प्रकृतीनां । वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥

(योगदर्शन)

अर्थ—जीवात्मा में प्रत्येक शक्ति पहले ही से विद्यमान है। एक चींटी में वह समस्त शक्तियाँ निहित हैं, जो ब्रह्मा में स्पष्ट हैं। नदी अपने वेग से सब स्थान पर एक ही जैसी बहती जा रही है जो कृषक अपने खेत का बाँध हटायेगा, उसके खेत में पानी अवश्य भर आयगा।

आजकल [illegible] यह [illegible] (नयी) विकास-वाद का कारण स्वीकार करते हैं कि [illegible] विकासवाद से भली भाँति परिचित

अहंकारनिष्ठा के मंदिर पर ध्वज मौदन चला रहा है, अर्थात् अब वहाँ मनुष्य के स्थान पर उल्लू बोल रहा है।

किंतु वह जाति, जो पुस्तकों के प्रकाश (ज्ञान) का स्रोत थी; वह जो उस समय उपस्थित थी, जब रूमी साम्राज्य की नींव भी नहीं पड़ी थी और जब वर्तमान समय की योरपियन शक्तियों (राष्ट्रों) के पिता-पितामह जर्मनी के जंगलों में नग्न फिरते थे, वह जाति जिसके आदि का पता लगाने में इतिहास की आँखें फटती हैं, वह जाति अपने देश में आज तक बीस करोड़ मौजूद है और रहती-रहेगी। क्यों ?—क्योंकि उसका प्रत्येक वाक्य 'ओम् आनंद' से आरंभ होता है, और "शांति ! शांति !! शांति !!!" पर खतम होता है; क्योंकि युद्ध-विग्रह के स्थान पर वैराग्य और त्याग उसका शस्त्र है; क्योंकि और देशों को विजय करने के स्थान पर अपने आपको विजय करना उसका आदर्श है। ईश्वर का अनुग्रह इस जाति पर है, और रहेगा। यही जाति है जो मुसलमानों को मसजिदें बनाने के लिये चंदा देती है, और ईसाइयों को गिरजे तैयार करने में सहायता देती है।

संसार में प्रत्येक देश अपने एक कर्तव्य को लिए हुए है। भारत को ब्राह्मणत्व (Priest of Nature) की ड्यूटी मिली हुई है। किसी को सांसारिक तृष्णा ने व्याकुल किया है, किसी को भोगेच्छा ने विचलित किया है। हिंद तो वही है, जो केवल राम पर प्राण समर्पण करता है, ब्राह्मण वह है, जो अपनी जिह्वा से यह गा रहा है—

हम नये ढंग दिखलायेंगे भारत का [illegible]
सुनें सबे [illegible] [illegible]
[illegible] रोटी खायेंगे [illegible] पड़ रह जायेंगे।
ताली-ताला सारेंगे आनन्द का मजक दिखलायेंगे ॥

लिये निश्चित नहीं, हिंदुओं को तो परमेश्वर ही सूझता है। जिसका जी चाहे फूलों को काट-छाटकर पंखड़ियाँ पत्ता गिने (Botany), जिनका जी चाहे उनसे स्त्रियों की सेज सजाए, हिंदू तो उन्हें पूजा के लिये प्रिय समझते हैं। उनको तो पीपल, तुलसी, गाय और साँप में भी देवता ही दर्शन देता है। मछली और कछुआ भी अवतार (परमेश्वर) हैं। कुशा और भोज-पत्र भी पवित्र हैं। कौन वस्तु है, जो आनंदकंद की द्रव्य नहीं है। सच्चा हिंदू तो नारायण ही में रहना-सहना और निवास-प्रतिवास करता है। योरप के ज्योतिषियो ! आपको तारों का लोक दिखाई देना मुबारक हो। भारतवासी तो वहाँ ज्योतियों की ज्योति (The Light of Lights) को देखेंगे—

यार[1] यारा कुल आलम देखे, मैं देखा सदरु[1] माहीं[2] दा।

हुन[3] किस थीं यार छिपाई दा।

मायारूपी दुपट्टे पर वारे-न्यारे जाते हो। इसी पर बस मत करो। यह माया का दुपट्टा उठाकर सुन्दर-कपोल प्यारे श्यामसुन्दर पर मन और आँखों को भौंरा बना दो।

मरा दर दिल बग़ैर अज़ दोस्त चीज़े दर नमी गुंजद।

बख़िल्वत ख़ानए-सुल्ताँ कसे दीगर नमी गुंजद॥ १॥

दरूँ-कस्रे-दिल शाहम, चुके शाहे कि गर शाहे।

ज़ दिल बेरूँ शवद फ़ौरन दरूने-बहर नमी गुंजद॥ २॥

अर्थ—मेरे हृदय में प्रीतम के अतिरिक्त और वस्तु कोई नहीं समाती है। बादशाह के एकांत स्थान में कोई दूसरा मनुष्य नहीं जा सकता ॥ १ ॥ हृदय-मंदिर में मैं एक ऐसा बादशाह रखता हूँ अर्थात् मेरे हृदय में एक ऐसा बादशाह है कि यदि वह कभी हृदय से बाहर [illegible] हो, अर्थात् यदि वह कभी हृदय से बाहर [illegible] समा नहीं [illegible]

पाश्चात्य देश निवासियो! तुम मानवीय शरीर के रक्त और हड्डियों से हाथ बहुत भर चुके (Anatomy)। आओ, अब इस शरीर में उस महान ज्योति स्वरूप का दर्शन करना सीखो॥

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत्।

तात्पर्य - आकाश की ओर दृष्टि डालो, प्रीतम हंस (सूर्य) बनकर प्रकाशमान है। आकाश और भूमि के बीच देखो, प्यारा वसु (वायु) बनकर मस्ताना चाल चल रहा है। पृथ्वी पर होत्र (अग्नि) के वेष में जुला रहा है। वही अतिथि बनकर घर में आता है। मनुष्य के रूप में तेज दर्शाता है; उजेले में वही चमकता है; व्योम (ether) में वह है; पानी में वही (जल-जंतुओं के नाम से) उत्पन्न होता है; भूमि पर वही (वनस्पति के रूप में) उत्पन्न होता है, यज्ञ में वही प्रकट होता है; पहाड़ों पर वही (नदी-झरनों के वेष में) निकलता है। वह सत्य है, वह महान है।

> चंपा में चतुर्भुज, मोतिये मोहनलाल,
> केशवान में केशव, अरगट्टे गिरधारी है;
> गुलाब में गोपाल लाल, सोसनी में श्याम भाल,
> सेवती में सीतापति, मरुवे मुरारी है।
> नरगिस में नारायण, दामोदर दाऊदी में,
> कर्योंडे में कृष्णरूप, श्यामतनधारी है।
> अनंत फूल फूलन में, फूल्यो अनंत राम,
> फूल-फूल पात-पात बासना तुम्हारी है।

इंद्रियों से अतीत, [illegible] शक्ति-भरे, सच्चे आनंद और पवित्र जीवन का [illegible] (हे राम) [illegible] हिंदू शब्द शास्त्र (व्याकरण) क्या हाथ में लेता है? क्योंकि 'पाणिनि' ने

यह दावा किया है कि उसका विषय मुक्ति का द्वार हो सकता है। महात्मा पंडित ज्योतिष-शास्त्र का किसलिये अध्ययन करता है ? केवल इसलिये कि वेद का यह एक अंग (नेत्र) है। धर्मात्मा ब्राह्मण को ओषधि (जड़ी, बूटी, रस आदि) के बनाने व करने में क्यों प्रीति हो जाती है ? क्योंकि उसने सुना है कि कुछ ओषधियाँ शुद्ध सतोगुण को बढ़ाती हैं, और इसी हेतु परमेश्वर से मिलने का साधन हैं। तर्कवादी अपने न्याय-शास्त्र की ओर हिंदुओं का चित्त कभी आकर्षित नहीं कर सकते थे, यदि अपने ज्ञान को संसार से मुक्ति देनेवाला न वर्णन करते। साहित्य को केवल धर्म, अर्थ और काम ही का साधन नहीं सिद्ध किया, वरन् मोक्ष दिलानेवाला भी कहा है।

हिंदुओं के लगभग सब छंद सांसारिक बखेड़ों और जन-प्रीति (इश्क़मजाज़ी) या तो नाम ही नहीं जानते, यदि जन-प्रीति को कहीं स्थान दे भी दिया है, तो परमेश्वर की भक्ति और ज्ञान अपनी झलक दिखाए बिना नहीं रहे। हिंदी-भाषा का एक कवि प्रशंसा तो अपनी प्रिया के नयनों (नेत्रों) की कर रहा है, किंतु भगवान के समस्त अवतारों के नाम बोल गया है—

> मच्छ-सम मरधात, कमठ दर कच्छ भाल,
> बावन से छुद्र्दे को निरपट कर दैहैं ;
> मीन न निहारें हिये, पाहे बाराह-सम,
> कादे कै परशुराम विरह न पेरे हैं।
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

हिंदुओं का साहित्य तो ज्ञान और भक्ति के मर्मरंग हो चुका है। भगवत्प्रीति अपने सारे चमत्कार दिखाती है।

Religion present in all its phases.

अर्थ—धर्म अपने प्रत्येक स्वरूप में विद्यमान है।

राग-विद्या क्यों प्यारी लगने लगी ?—क्योंकि नारद, याज्ञवल्क्य, गौरांग आदि मुनि लोगों ने यह साखी दे दी कि सामवेद के गायन में उपयोगी होने के अतिरिक्त वैसे भी भजन संकीर्तन मन को वश में लाने का सरल साधन हो सकता है। हिंदुओं के यहाँ नाचने का कुछ मूल्य नहीं, किंतु प्रेम के ज़ोर से राम के आगे नाचनेवाला भी राम की भाँति पूजा जाता है—

> नाचना जो चाहे, तो नाच रघुनाथ आगे,
> गाया जो चाहे, तो गोविंद गुण गाओ जी।
> भागना जो चाहे, तो भाग मंद कामों से,
> आना जो चाहे, तो राम-शरण आओ जी।

शरीर को मोड़ना-तोड़ना, हड्डियों को ढीला करना, शरीर को तपाना, मांस को सुखाना अर्थात् हठयोग के आसन, बद्धमुद्रा आदि भी स्वीकार हैं, क्योंकि यह सुन लिया है कि सत्य-धाम तक पहुँचानेवाली सीढ़ी का हठयोग भी एक डंडा है। किंतु हाय! चाँदी-सोना जिसका नाम सुनकर सादे लोगों की आँखें खुल जाती हैं, जिसके लिये घरों में खटपट और देशों में कोलाहल मचता है, वह चाँदी-सोना हिंदुओं के यहाँ सच्चे आनंद का देनेवाला सिद्ध नहीं हुआ। विद्वान् ब्राह्मणों ने सिद्ध कर दिया कि 'त्याग', 'त्याग', निःसन्देह 'त्याग' आनंद और मुक्ति का साधन है। सोलह आने का रुपया जोड़ा त्याग हुए मूर्खों को मानो सोलह कला-युक्त भगवान् से भी अधिक सम्मान योग्य हो, किंतु समाज का टका-पैसा सच्चा गानेवालों में व्यर्थ है,

वरन् अप्रचलित और खोटे सिक्कों-जैसा है। नीचे के शब्द एक सच्चे हिंदू के मन की दशा दिखाते हैं—

> जैसे भूखे प्रीति अनाज, तृषावंत जल सेती काज।
> जैसे मूढ़ कुटुंबपरायण, तैसे नामे प्रीति नारायण॥
> नामे प्रीति नारायण लागी, सहज सुभाव भयो बैरागी।
> जैसे कामी कामिनी प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारी॥

भूखे को रोटी, प्यासे को पानी, मा को बच्चा, विषयी को स्त्री वैसी प्यारी नहीं होती, जैसी सच्चे हिंदू को सत्यात्मा (सत्य वस्तु) प्यारी होती है।

> यारदे दा सानूँ सत्थर चंगेरा, भट्ठ वे खेड़ियाँ दा रहना।
> सूल सुराही खंजर प्याला, बिंग कसाइयाँ दे सहना॥

तात्पर्य—यदि शोक-भवन-कुंज (श्मशान) में सच्चा प्यारा नहीं भूलता, तो वह स्वीकार है, किंतु वह राजभवन अस्वीकार है, जो प्यारे को याद से बिसार देता है। रक्त निकालनेवाले नोकदार काँटे, मदिरा की सुराही की भाँति प्रिय हैं, और खंजर प्याले के समान प्यारा है, वधिक के कुल्हाड़े सिर पर बरसने अंगीकार हैं, इस शर्त पर कि हमारे प्रेम-भाजन की दूरी (पृथक्ता) न हो।

ऐसी उच्च दृष्टिवाले भारतवासियों के निकट सोने-चाँदी की भला क्या पूछ? सोने-चाँदी के काम को तुच्छ न समझते तो और क्या? सुनारों को शूद्र-पेशा माना गया। जंगलों में नंगे शरीर रहकर और फल-फूल खाकर अध्यात्म-चिंता में मगन जीवन व्यतीत करनेवाले ब्राह्मणों को कपड़ा, सोना, लेना-देना, [illegible] के व्यापार बिलकुल निरर्थक, निस्सार [illegible]

अर्थ—वट के पेड़ के नीचे बड़ी-बड़ी आयुवाले जिज्ञासु एकत्र थे। गुरु छोटी आयु का था। विचित्रता यह कि गुरु ने जिह्वा नहीं हिलाई, पर सबके संदेह निवृत्त कर दिए। यह कैसा व्याख्यान है?—

मुअल्लिम कीस्त ? आरिफ़, दामने-सहरा दबिस्तानश ।
सबक़ ? ख़ामोशी व लरज़ाँ दिलम तिफ़्ले-सबक़ख़्वानश ॥

अर्थ—यहाँ गुरु कौन है? ब्रह्मज्ञानी, और जंगल का दामन उसकी पाठशाला। इस पाठशाला में पाठ क्या है? मौनता, और मेरा काँपता हुआ हृदय उसके यहाँ पाठ पढ़नेवाला लड़का है। इस परम शांति और सच्चे आनंद के खोजनेवालो! परम सुख के अभिलाषियों का शारीरिक और मानसिक या नैतिक आवश्यकताओं से संबंध केवल नाम-मात्र का था।

अब दरजी, ठठेरा, लोहार, बढ़ई, कुम्हार, इन सबको भी शूद्र-पेशा कहा गया। इसके यह अर्थ नहीं कि इमारत आदि का काम उन दिनों बहुत बुरा होता था। इस कला में उन लोगों की योग्यता के प्रमाण बहुतायत से मिलते हैं। पर ब्रह्मविद्या के साथ इन व्यवसायियों का सीधा संबंध (direct relation) न होने के कारण शूद्रों ही की श्रेणी में ये गिने गये।

भारतवासियो! ज़रा आँख खोलकर देखो, तुम कहाँ आकर गिरे। आज ब्राह्मणों के बालक (महर्षि-कुमार) ईंट, चूना, लकड़ी, लोहे का धंधा (इंजीनियरिंग) को उस (सिंहासन) पर स्थान दे रहे हैं जिसका [illegible] कभी थी; कोहनूर ([illegible]) को मुकुट से उतारकर उसके स्थान पर कोयला [illegible] देखते।

[illegible] की [illegible] में [illegible] राम कहाँ [illegible] और कोने में [illegible]

पता लगे कि ये सब रेलें, तारें, तोपें, बंदूकें, स्टीम-इंजिन, कारखाने आदि जिनकी प्रशंसा में गद्गद हो रहे हो, एक इंच-भर भी पिछले लोगों की अपेक्षा आजकल के लोगों को अधिक आनंद नहीं दे रहे। सब ऊपरी हाहा-हूहू (vanity) ही है।

राम यह नहीं कहता कि पिछले समय का बहलियों और एक्कों को फिर नए सिरे से प्रचलित करो, और धुएँ वा बिजली की कलों को भारतवर्ष में पग न रखने दो। उसका मन्तव्य यह है कि इन नवीन पाहुनों को उचित मूल्य और मान पर लो। वह बात न हो कि घोड़ा मोल लिया था अपनी सवारी के लिये, उल्टे हमको ही गिराकर वह रौंदने लग पड़े। बिल्ली के बदले पवित्र माता (ब्रह्म-विद्या) को न बेच दो। एक (अनावश्यक) दिल्लगी के खेल में अपने आत्मा और प्राण की बाजी मत हार दो। सुख की खोज में सुख के धुर्रे मत उड़ा दो। वर्षा-ऋतु में पपीहा पानी की बूँद के लिये अधीर होकर ऊपर को उड़ता है, किंतु बरसते जल में प्यासा रहता है, पानी की खोज ही पानी से वंचित रखती है। इस बरसाती जानवर-वाली दशा मत होने दो। रीछ की भाँति मित्र के मुँह से मक्खी उड़ाते-उड़ाते मित्र को थप्पड़ से प्राण-हीन मत करो।

अंकगणित में एक भिन्न (traction) के अंश (numerator) को बढ़ा देने से रकम का मूल्य बढ़ जाता है; किंतु यदि साथ ही हर ([illegible]) भी उसी निष्पत्ति [illegible] वा संख्या) से बढ़ जाय, तो मूल्य वैसा का वैसा ही रहता है। जैसे [illegible]। यही दशा पाश्चात्य कलाओं और आविष्कारों की है [illegible]। विषय-भोग की सामग्री को बढ़ाने की चिंता में है और इस उपाय से आनंद की राशि को अधिक किया चाहते हैं—

$$\text{आनंद} = \frac{\text{विषय-भोग की सामग्री}}{\text{तृष्णाओं का समुदाय}}$$

भारतवासियो ! उनका अनुकरण तो करने लगे हो; किंतु देखना कि अंश (विषय-भोग की सामग्री) को बढ़ाते समय हर (तृष्णाओं का समुदाय) उसी निष्पत्ति (संख्या) से नहीं, वरन उससे भी अधिक संख्या से बढ़ा जाता है। जैसे नशेबाज आनंद के लिये इधर अफ़ीम या शराब के सेवन को नित्यप्रति बढ़ाता जाता है, उधर नशे की तृष्णा भी वैसे ही अधिक होती जाती है। जो आनंद आरंभ में बहुत थोड़े परिमाण में प्राप्त होता था, वह आनंद अब अधिक परिमाण में नहीं मिलता। आयु व्यर्थ में नष्ट हो जाती है। अफ़ीम या शराब का मुहताज बिना मतलब बनना पड़ता है। यों भी तो देखो, अंश को कहाँ तक बढ़ा लोगे। भोग के सामान कहाँ तक एकत्र करोगे। बाहरी सामान अपरिमित कभी नहीं हो सकते, सदैव भिन्न (fraction) कभी में ही रहेगी। इसी आनंद की राशि को बढ़ाने के लिये हिन्दुओं की शैली यह है कि तृष्णा को, जो हर के स्थान पर है, कम करना आरंभ कर दो। तृष्णा ज्यों-ज्यों सिमटती जायगी, आनंद बढ़ता जायगा। जब बिलकुल शून्य हो जायगी, तो अंश चाहे कुछ हो, चाहे न हो, समस्त राशि अनंत हो जायगी। और यह तृष्णा (हर) केवल ज्ञान के द्वारा ही मिट सकती है, और किसी उपाय से नहीं।

एक मनुष्य ने लैला मजनूँ की कहानी पढ़ी। पढ़ते ही मजनूँ बनने की इच्छा उठ आई। अपनी स्त्री को त्यागकर लैला का एक चित्र बना लिया और छाती से लगाए फिरना आरंभ कर दिया। अब मजनूँ वाला प्रेम तो चित्त में था नहीं, [illegible] का प्रेमपात्र तत्काल ले लिया। धिक्कार है ऐसे

मजनूँ बनने पर। न इधर के रहे, न उधर के रहे। आजकल के भारतवासी! यदि तुमको अँगरेजों का अनुकरण करना ही स्वीकार है, तो मेरे प्यारो! उनका प्रेम (साहस, दृढ़ता, एकता) ले लो, उनका जुनूँ (सनक) ग्रहण कर लो, किंतु उनकी प्रेम-पात्री लैला (संसार के नाशवान भोग-विलासों) को मत ग्रहण करो। मजनूँ और फ़रेफ्ता (अनुरक्त) बनना हो, तो अपने घर की अति तेजोमयी ब्रह्मविद्या (आत्मज्ञान) पर बनो। अपने पहलू से चन्द्रमुखी प्रिया को उठाकर संसाररूपी बुढ़िया के चित्र पर दीवाने और आसक्त होना तुम्हें कलंक लगावेगा। हाँ, इस संसाररूपी बुढ़िया को अपनी चंद्रकांता (ब्रह्मविद्या) की एक तुच्छ दासी बना लेने में कुछ हर्ज नहीं है।

दीन गँवाया दुनी से, दुनी न चाली साथ।
पैर कुल्हाड़ा मारिया मूरख अपने हाथ॥
स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः।

अर्थ—अपने घर की मलाई त्यागकर भीख माँगने को मूर्ख के अतिरिक्त और कोई नहीं जाता।

इतिहास साक्षी देता है कि शक्ति से भर देनेवाली ब्रह्मविद्या का भारतवासियों ने जब कभी तिरस्कार किया, तभी नीचा देखा; अपने स्वरूप के महत्त्व को भूलकर हिंदू लोग जब कभी स्वार्थपरता के वश में पड़े, मरे।

अभी समय है, संभल जाओ, शरीर के कीचड़ में निकल आओ। अपने शुद्ध स्वरूप में डेरे लगाओ। शिवोऽहं शिवोऽहं की ध्वनि उच्च होने दो और आनंद के कैलाश पर पवित्र ॐ का फहरा[illegible] (पताका [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

गाओ रे सोहले, देखो शुभ सगुना।
हरि सँग[1] गमन, हरी सँग सँग[2] ना[3] ॥

अद्वैत सिद्धांत (भगवान् शंकर) के अनुसार आत्मा में विकास या संकोच (संवृद्धि वा प्रतिवृद्धि) नहीं हो सकता वरन् केवल माया में होता है।

जैसे घर की चहारदीवारी से उत्पन्न अंधकार उसी घर को छिपा देता है, जैसे सूर्य ही की तीक्ष्ण प्रभा सूर्य को देखने नहीं देती, जैसे नदी से उत्पन्न फेन नदी को आवृत कर लेता है, जैसे रज्जु ही में कल्पित सर्प-आकृति रज्जु को छिपा लेती है, वैसे ही ब्रह्म में (स्वरूपाध्यास से) कल्पित माया (नाम-रूप) ब्रह्म को लुप्त कर देती है।

हुजूमे जलवा हम यकमर छिपावे-जलवा हस्त ईं जा।
नकाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी ॥

अर्थ—यहाँ ज्योति की अधिकता ही ज्योति का आवरण है। नदी का कोई परदा नहीं, वरन् उसके नंगेपन की आँधी (ज्वार) ही परदा है।

फिर जैसे नदी-जल फेन के बुर्के (परदे) में से भासमान होता है, जैसे सूर्य मेघावरण को भासमान कर, आवरण के बीच में से अपनी कांति की प्रभा विकीर्ण करता है, जैसे चंद्रमा अपने (ग्रहण के) घूँघट में से तेजोमय मुख को दिखाता है, जैसे रज्जु कल्पित सर्प में अपनी लम्बाई और मोटाई प्रवेश करता है, जैसे दीपक की ज्योति काँच के आवरण (चिमनी) के भीतर से आँखें लड़ाती है (संसर्गाध्यास); वैसे ही ब्रह्म माया के आवरण में अपना तेज प्रविष्ट करता है, अर्थात् नाम-रूप संसार में सच्चिदानंद स्वरूप से विद्यमान होता [illegible] ब्रह्म [illegible] में [illegible] मान होता है, उसके नाम-रूप

तह में वास्तविक सत्ता सच्चिदानंद की ही है। अद्वैत-सिद्धान्त के अनुसार इवोल्यूशन (विकास) इस माया ही में है। आत्मा में न्यूनाधिक (उन्नति-अवनति) कैसी ?

माया

निशांधकार की काली चादर छा रही है। तारे जगमगा रहे हैं। किसी की मजाल (शक्ति) क्या कि इनकी संख्या का अनुमान लगा सके? वाह री अनेकता! एक ही पलंग पर एक दूसरे की गर्दन में बाहें डाले दूल्हा-दुलहिन आराम में पड़े हैं। किन्तु दूल्हा तो लाहौर के टाउनहाल में परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, और दुलहिन अपनी देवरानी या जेठानी से गिला-उलहना के लेन-देन में लगी है। ए लो, लड़ाई-झगड़ा आरंभ हो गया! चुप रह बीबी! चुप रह। तेरा पतिदेव परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, कोलाहल बंद कर। उसको (disturb) डिस्टर्ब मत कर, अर्थात् उसका हर्ज मत कर। ए लो! वह चौंक पड़ा। नींद उचाट हो गई। कैसी परीक्षा ? किसका टाउनहाल ? यहाँ तो सुकुमारी है और आप है। कमरे के बाहर आकर देखा, तो कोहरे-ही-कोहरे के ढेर लग रहे हैं। हाथ फैलाया नहीं सूझता। प्रभात का पेश-खेमा (आगमन का चिह्न) अभी दृष्टि-गोचर नहीं होता। अरे शुक्र! तेरा नृत्य-गायन क्या हुआ ? तुम्हारे सखा और सहचर (तारे) शादी को भूल बैठे ?

दूल्हाराम ने नौकर को पुकारा। उत्तर न मिला। निकट जाकर देखा, तो नींद में खर्राटे भर रहा है। हमारे नवयुवक की छोटी सी छाती में हलचल मच गई। मन में एक क्षणिक आवेश उत्पन्न हो गया। मुखमंडल भयावनी निशा से भी अधिक भयानक बन गया। नौकर को [illegible] से जगाया और कान खींचे, [illegible]

अर्थ—मैंने कहा था कि जब तू आयगा, तो हृदय क दुखड़ा तुमसे वर्णन करूँगा, मगर क्या कहूँ कि जब तू आता है, तो मैं बेहोश हो जाता हूँ।

कहने देती नहीं कुछ मुँह से मोहब्बत तेरी।
लब पर रह जाती है आ आ के शिकायत तेरी॥
यार सब कुछ थे हमें हिज्र के सदमे ज़ाहिर।
भूल जाता हूँ मगर देख के सूरत तेरी॥

गगन-मंडल का महारथी (सूर्य) किरणों के भाले हाथ में लिए अपने सुनहरे घोड़े को उड़ाता चला आता है। य खबर पाते ही अंधकार की सेना के मनचले वीरों ने एक होकर जी तोड़ संग्राम (desperate struggle) प कमर बाँधी है। सर्दी समस्त रात्रि की अपेक्षा अधिक हो गई, नींद और आलस्य ने यद्यपि रात-भर कोई कसर न उठा रक्खी थी, किंतु प्रभात के समय टैक्स वसूल करना ए महानेयाची से आरंभ किया कि संसार में कोई अमीर बचा न पाया। धुंध के दल-बादल ने अँधेरे की सहायता को आकर घमंड से डेरे डाल दिए। ए लो, बादल भी मारे उमंग के मा में दल डाले आ उपस्थित हुए, आँखें दिखाने लगे और गरज गरजकर डराने लगे। रात के आरंभ में क्या ही मनलुभाव चाँदनी (उजियारी) छिटक रही थी। अब तह-दर-तह अँधियारी छा रही है।

रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे आ रे ! बादर कारे।

आलस्य, अंधकार और धुंध आदि की सेनाएँ सूर्य के महत्व को नष्ट करने पर कैसी तुली हुई हैं ! क्या सचमुच सूर्य के र को रोक लेंगी ? यदि ऐसा हो गया, तो संसार की क्या द होगी ! ईश्वर करे, सत्य की जय हो प्यारे ! घबराओ नहीं, क तो अंधकार के अधिकारवश और कहाँ सर्य ! सामना ही क

है ? रावरानी के वंगी लाट लाख जोर मारें, सूर्य का बाल बाँका नहीं कर सकते । घना उछल-उछलकर भाड़ को नहीं फोड़ सकता । सूर्य और छुपा रहे ? ख्याल में भी नहीं आ सकता । प्रकाशमान सूर्य और विरोध से उसका बिगाड़ हो ! बिलकुल निरर्थक है ।

वह देखना ! मेघों की तह-दर-तह परदों को काटकर कोहरे के कवच को चीरकर उसकी किरणों की कृपाण भूमि के वक्षःस्थल को लाल करने लगी । विजयी द्यौ-सम्राट् (सूर्य भगवान्) विराजमान हुआ ।

नवीन रोशनी (ज्ञान) वालो ! स्मरण रक्खो, अज्ञान की काली रात व्यभिचार का कारण होती है (Deeds of darkness are committed in the dark), अंधकार (मूढ़ता) के काम (व्यभिचारादि) अंधकार (मूढ़ता) में ही किए जाते हैं, और जब इसका अंत आने लगता है, तो बला का तड़ाई-टंटा करवाती है । किंतु यह लड़ाई-झगड़ा जाज्वल्यमान ज्योति (सूर्य) की अभिवृद्धि का कारण कदापि नहीं है । सूर्य को तो निकलना ही निकलना है, रुक नहीं सकता । रामानुज के मतानुसार तुम्हारे भीतर के सूर्य (हंस, आत्मा) ने सुस्ती की रुकावट को चीर-फाड़ और अज्ञान के परदों को छिन्न-भिन्न करके अंततः प्रकट होना ही है, इससे जीवात्मा का देहद (असंख्य) भरा हुआ दल इवोल्यूशन (विकास) का कारण है । इस स्वाभाविक गुण के कारण से चींटी, बिच्छू, साँप, बिल्ली, बंदर आदि शरीरों की मंजिलों (योनियों) को पार करता हुआ यही जीवात्मा मानव-शरीर तक उन्नति पाता है, और यहाँ आत्मा अपने स्वाभाविक प्रकाश के बल से अज्ञान के अंधकार को नाश करके ज्ञानवान के रूप में [illegible]

जिससे कि सिर ऊँचा करें, देखें और फिर वही पानी हो जायँ।

ठीक—जाग्रोना सावोना नहीं खोवे। कोदाँ चीज हमेश अडोल है जी॥
जिवें बदलाँ दे चले चंद्र चलदा। जाने बालकाँ नूँ एह भूल है जी॥
चले देह इंद्रिय मन प्राण आदिक। ओह देखनेहार अडोल है जी॥
बुल्लाशाह सँभाल खुशहाल हूजे। ऐन आरिफ़ा दा एहो बोल है जी॥

आत्मा के असंग होने को सांख्य-शास्त्र ने भी बड़े ज़ोर से स्वीकार किया है—

"असंगोऽयं पुरुष इति" (सांख्यदर्शन १—१५)

अर्थ—यह पुरुष (आत्मा) संग (संबंध) रहित है।

ठीन—शुध्दा मादी ग़रा इक इसमें। सदा अपना आप सुरूप है जी॥
नहीं ज्ञान-अज्ञान दी ठौर ओथे। कहाँ सूर में छाँव और धूप है जी॥
पड़ा सेज के महि है सही सोया। इक स्वप्न का रंक और भूप है जी॥
बुल्लाशाह सँभाल अद मूल देखया। ठौर-ठौर में वही अनूप है जी॥
बुल्लाशाह तूँ भूप अपन्न पैदा। तेरे आगे प्रकृति का नाच है जी॥

आत्मा के असंग होने और केवल प्रकृति के विकास और उन्नति पाने को पंडित ईश्वरकृष्ण ने आश्चर्य-जनक कवियों जैसी सूक्ष्म विचारणा के साथ अपने प्रामाणिक ग्रंथ सांख्य तत्त्वकारिका में दिखाया है—

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥ ५९॥
(कारिका)

अर्थ- बहुरूपिये लोगों का नियम है कि भेष बदलकर अमीरों को धोका देते हैं, किन्तु पहले तो भेष और वेश के नीचे यह कामना उनके मन में अत्यन्त प्रबल होती है कि तमाशा दिखाते हैं, जिस प्रकार बन पड़े अपना असली रूप भी खोल दें। [illegible] यह कहकर कि अब [illegible] गया, मेरा काम

कर गया, बड़ा सम्मान करते हैं, और इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं – "बड़े बड़े इकबाल ! अटल प्रताप ! राज-पाट बना रहे, घोड़ों-जोड़ों की खैर (कुशल) ! परमेश्वर बनाये रक्खे ! इत्यादि ।" यही दशा प्रकृति की है । पुरुष को धोखा तो देती है, किंतु जी में यह जाने है कि अपना आप छिपाया तो सही, अब ज्यों-त्यों करके दिखा भी दूँ, भेद खोल ही दूँ ।

हाँ सच है, चींटी, बंदर आदि के शरीरों में यदि पुरुष ने नीचा देखा और दुःख पाया, तो प्रकृति के कारण; मनुष्य का चोला पहना, तो प्रकृति के कारण; ज्ञानवान कहलाया, तो प्रकृति के कारण; जब बंध और नीच दास होने के विचार का फ़ुकर (भ्रम) टूटा और यह ज्ञान पड़ा कि 'मैं पृथक् हूँ, पवित्र हूँ, असंग हूँ, निर्लेप हूँ, स्वतंत्र हूँ ।—

'असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः ।'

तो यह भी प्रकृति ही के कारण ।

इस ज्ञान के प्राप्त होने पर प्रकृति पुरुष को छोड़कर अपनी राह लेती है, और पुरुष आनंदघन अपने शुद्ध स्वरूप में रह जाता है, यही मुक्ति है । तात्पर्य यह कि प्रकृति सब कौतुक दिखा आप ही हट जाती है । ईश्वर करे, इस प्रकृति-पुरुष के वियोग की घड़ी शीघ्र प्राप्त हो । यह योगशास्त्र का उद्देश है ।

उपर्युक्त कारिका का शब्दार्थ यह है—"जैसे कंचनी सभा में जब पूरा-पूरा नाच दिखा चुकती है, तो अपने आप ही हट जाती है, वैसे ही प्रकृति जब अपने आपको पुरुष के आगे प्रकट कर देती है, तब आप ही छोड़ जाती है ।"

[illegible] किसी के साथ जा रहे हैं [illegible] मे बहुतेरा मन लुभाने का प्रयत्न करती है पर जब [illegible] ज्ञान हो जाय कि इन्हें मेरे

ठगिनी होने का पता लग गया है, तो गधे के सींग की तरह लुप्त हो जाती है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति (दुनिया) की कलई खुल जाने पर पुरुष को तत्काल छुटकारा मिल जाता है।

अब नहीं मालूम हमारे महात्मा पं० ईश्वरकृष्णजी महाराज किस प्रकार इस व्यभिचारिणी वेश्या (प्रकृति) के खेलों की फ़ीस लेकर उसके वकील बन बैठे। आप कहते हैं—

> नानाविधैरुपायैरुपकारिण्युपकारिण्यः पुंसः।
> गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थं कं चरति ॥ ६० ॥

अर्थ—प्रकृति तो पुरुष की भाँति-भाँति की सेवाएँ करती है, किंतु उसके बदले में पुरुष कोई उपकार नहीं करता। प्रकृति गुणोंवाली है, पुरुष निर्गुण है, तभी तो प्रकृति की प्रशंसित गुणशीलता देखो, कृतघ्न (पुरुष) के भले में कैसी यत्नवान् और तत्पर है! इस विषय को एक और पंडितजी महाराज ने अद्वितीय रीति से हिंदी-पद्य में पिरो दिया है। यद्यपि राम को आश्चर्य होता है कि वृद्ध पंडितों के यहाँ स्त्री का कुछ ऐसा साम्राज्य क्योंकर आ गया कि स्त्री (प्रकृति) के गीत गाते वे थकते ही नहीं। बात-बात में बहूजी को प्रधान बना दिया।

> सखी यह दुल्हा दुलहिन कैसे।
> अति बेमेल विचित्र भाव के कहूँ सुने नहिं ऐसे ॥
> दुलहिन अति ही मुघर सुहावन जोबन उन एसे।
> दूल्हा बाहि बयान "पुर" को ह्वै बैठो उल्लक जैसे ॥
> दुलहिन अतिगुणवंत चतुर ज्यों हाव-भाव हो वैसे।
> दूल्हा गुण की बात न जाने पूरो गोबर-गणेश ॥
> सबकी एक दुलहिन वह दुल्हा पर सबर एक ऐसे।
> दुलहिन [illegible] वह नाचत गावत [illegible] सब प्रेम के नेम ॥

राम केवल इतना ही पूछना [illegible] कि महाराज वकील साहब! [illegible] तो क्या करना [illegible] जब प्रकृति स्वयं

अपना नाच-गाना, अपनी अठखेलियाँ, अपना सभी कुछ पुरुष की एक दृष्टिपात पर बेच देने को राजी है, तो आप कौन हैं उनकी सिफारिश करनेवाले ? तलवे न बुलाए, वकील बन के आए (Unsolicited solicitor)। बस भूल से स्वतः पड़ जानेवाली एक दृष्टि ! और कुछ नहीं ! इस पर समस्त संसार (प्रकृति) के तन-मन-धन का सौदा हो गया (bargain struck)।

मस्त गश्तम अज़ दो चश्मे साक़िये-पैमाना नोश।
अलिविदाअ, ऐ नंगो-नामूस ! अलविदा, ऐ अक़्लो-होश ॥

अर्थ—मैं प्याला पिलानेवाले साक़ी की दोनों आँखों से मस्त हो गया हूँ, ऐ अपमान ! दूर हट और ऐ बुद्धि और होश ! दूर हो।

या रब ईं चश्मस्त या जादूस्त कज़ कैफ़ियतश ;
हम चो दरियाए-मुहीत ईं क़तरा अम आमद बजोश।

अर्थ—हे ईश्वर ! यह आँख है या जादू है कि उसकी कैफ़ियत (दशा) से यह मेरा बिंदु (आँख का आँसू) घेर लेनेवाली नदी की भाँति आवेश में आ गया है।

इन चोली दे नैन कटोरे। बाहीं डाँगन तेंदे डोरे।
राँझा डोली ते मैं कुरबानी। दबदी दलिदर मरसी पानी।

हाय दृष्टिरूपी मद्य ! ऐ उन्मत्त नेत्र ! तूने ग़ज़ब (आश्चर्य) किया। न केवल सारे सन्तों के प्रकृति को भाँति-भाँति के नाच नचाए, वरन तेरी कृपा ने कोमलता की मूर्ति (मोहन-मोहन) और सुन्दर-सुन्दर (दोनों) पुरुष को प्रकृति के हृदय-चक्र और [illegible] तक पहुँचाया [illegible]

[illegible]
[illegible]

कोठे तों चढ़ पाइया भाती, दो नैनों दी रमज़ पिढाणी।
घाय गया नी! जानी लूँ लूँ दे विच।
हाय घाय गया नी! सोहना लूँ लूँ दे विच।
सानूँ ज़रा कु उस्वा दिखा गया नी।

यह दृष्टिपात क्या मज़ा थी। इधर प्रकृति में तिलमिलाहट डाल दी, उधर पुरुष बेचारा अपने नयन-बाण के साथ ही प्रकृति की प्रत्येक नस में जा गिरा। इधर जादू-भरी दृष्टि का भाला बेचारी प्रकृति के यकृत में घुभा, उधर पुरुष उसके हृदय में बंदी हो गया।

> अबरूए-कइकशाँ भी अनोखी कमंद है।
> बेक़ैद हो असीर जो देखूँ उधर को मैं॥

हाय एकान्त-कारावास!

> अपना यह दावा, नहीं दिल में कोई तेरे सिवा।
> उनका यह इल्ज़ाम! अच्छी क़ैदे-तनहाई हुई॥

यदि भोला-भाला पुरुष बेमुरव्वत (कृतघ्न) था, तो भी उसका पल्ला दोष से नितान्त मुक्त है, क्योंकि उसने अपने लिये दंड प्रकृति को आप बता दिया।

> ज़िंदों न भी ज़िंदा भजना हो, अपने दिले-तंग में जगह दो।

ऐ पुरुष (यूसुफ़)! यह कैसा बंदीपन है! जुलेखा का हृदय-दर्पण बंदीघर बना है।

मयायद जुज़ ख़यालत दर दिले-मन। मगुज़ यूसुफ़ मरे-ज़िंदाँ के दारद॥१॥
यूसुफ़े-गुम गश्ता रा बेस्ट मख़ाय। दर शुहरे-चाहे-ज़िक़ यादी सुराग़॥२॥

अर्थ—तेरे ख़याल के सिवा मेरे दिल में और ख़याल नहीं आता है। यूसुफ़ के अतिरिक्त क़ैदख़ाने का विचार और कौन रखता है।

[illegible] के [illegible] के रूप में तू [illegible]

यह प्यारे की छाया (प्रतिबिम्ब) है, जो जुलेखा रूपी प्रकृति के भीतर प्रविष्ट होकर संसार-रूपी ऊधम मचाती है। यही प्रतिबिंब वीर्यबिंदु की भाँति प्रकृति के पेट (गर्भ) में स्थिर होकर सृष्टि के रूप में उत्पन्न होता है।

ज्ञान आने पर प्रकृति के कलोल बंद हो जाने को अनोखे ढंग से इस प्रकार वर्णन किया है -

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥ (कारिका ६१)

अर्थ—मेरी सम्मति में प्रकृति अत्यन्त दर्जे की लज्जावती है, जब उसे तनिक भी संशय होता है कि मैं देखी गई हूँ, तो बस फिर पुरुष के सम्मुख भूले से भी नहीं आती।

व्याख्या—जैसे कोई राजकुमारी राजप्रासाद के झरोखे में बैठी शृंगार कर रही हो, तो जहाँ तक उसे यह विचार रहता है कि मुझे कोई पुरुष नहीं देख रहा है, अपने बनाव-शृंगार में लगी रहती है, ज्यों ही उसने यह समझा कि मुझे पुरुष ने देख लिया है, झट खिड़की बंद की और ऐसी चंपत हुई कि फिर सूरत नहीं दिखाती। यही दशा प्रकृति की है। जब यह जान पड़ा कि मेरा ज्ञान हो गया है, फिर नहीं रहती। ज्यों ही ज्ञानवान् ने उसे यों संबोधित किया कि—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अधिकारों को स्थिर रखना और अपनी बड़ाई को बनाए रखना मनुष्य का सबसे महान् और सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। दुःखों का दूर करना और परम आनंद का प्राप्त करना यही ब्रह्मविद्या का लक्ष्य है। सांख्यदर्शन के पहले ही सूत्र में तीनों प्रकार के दुःखों (बाह्य, आभ्यन्तर और शारीरिक) अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दुःखों को जड़ से दूर कर देना परम पुरुषार्थ (कर्त्तव्य) कहा गया है। यथा—

अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिरत्यंतपुरुषार्थः। (सांख्य १-१)

हिंदू-शास्त्र भी मनुष्य-जीवन को ग़नीमत समझते हैं। वेदांत तो मरने के पश्चात् मुक्ति का भरोसा नहीं करता। इस विषय में ईश्वर से भी उधार नहीं, नक़द मुक्ति और परमानंद हाथोंहाथ लिए बिना उनका पीछा नहीं छोड़ता। उपनिषदें दर्शनी हुंडी से भी बढ़कर हैं। पाश्चात्य विज्ञान और ब्रह्मविद्या एकसाँ प्रयोजन को पूरा करने में कहाँ विरोध करते हैं।

पंजाब के देहात में नियम है कि नाई लोग सामान्य सेवकों का भी काम देते हैं। बहुत समय का वृत्तांत है कि एक गाँव के पटवारी ने अपने नाई को बुलाकर अति ताकीद से कहा कि "बहुत शीघ्र भोजन करके यहाँ से सात कोस पर मेरे समधी के गाँव में जाओ, अत्यंत आवश्यक संदेशा भेजना है।"

नाई बेचारे के तेज़ी-जल्दी से हाथ-पाँव फूल गये। घबराया-घबराया अपने घर गया। एक बासी रोटी अपनी स्त्री से लेकर एक अँगोछे के खूँट में बाँधी, इस विचार से कि कहीं रास्ते में खा लूँगा, और झट चलता बना। गया 'गया' जल्दी-जल्दी पग बढ़ा रहा है अपने स्वामी की आज्ञा किस सच्चे हृदय के साथ पूरी कर रहा है। किंतु ले आले ' तूने चलते समय संदेशा तो पटवारी से पूछा ही नहीं, समधी से जाकर क्या कहेगा?

नाई को इस बात का विचार ही नहीं आया। वह अपनी जल्दी ही की धुन में मग्न चला जाता है। जहाँ जाना था, वहाँ पहुँचकर पटवारी के समधी से मिला। वह व्यक्ति संदेसा न पाकर बड़ा व्याकुल हुआ। नाई को धमकाया या कुछ कटुवचन कहा ही चाहता था कि एक युक्ति सूझ पड़ी। तनिक देर मौन रहने के पश्चात् बोला—"अच्छा! तुम पटवारी से तो संदेसा ले आये, खूब किया! अब हमारा उत्तर भी ले जाओ। किंतु देखो, जितनी शीघ्र आये हो, उतनी ही शीघ्र लौट जाओ। शाबाश!"

नाई—(जी में प्रसन्न होकर) जो आज्ञा जजमान!

पटवारी के समधी ने एक लकड़ी का शहतीर जिसको उठाना साहस का काम था, दिखाकर नाई से कहा कि यह छोटी शहतीर पटवारी के पास ले जाओ, और उनसे कहना कि "आपके संदेसे का यह उत्तर लाया हूँ।"......................

बेचारे नाई ने सब काम परिश्रम और ईमानदारी से किए, किंतु आरंभ ही में भूल कर जाने का यह दंड मिला कि शहतीर सिर पर उठाए हुए पसीना-पसीना हुए पग-पग पर दम लेते, हाँफते-काँपते लौटना पड़ा।

विज्ञान अत्यंत शीघ्र गति से उन्नति की सीढ़ी पर गो ऑन, गो ऑन, ऑन, ऑन, ([illegible]) करता चला जाता है। जैसे नाई के पग बढ़ा रहा है। [illegible]

[illegible] शाबाश!

[illegible] ? उसने [illegible]

[illegible]

[illegible] रहा है। किंतु

[illegible]

झमेलों में संतोष और आनंद नहीं प्राप्त होगा, और देर में चाहे सवेर में (so called civilization) झूठी और नकली सभ्यता का शहतीर सिर पर उठाकर भारी बोझ के नीचे कठिनता से अपने स्वरूप आत्मा की ओर वापस लौटना पड़ेगा।

ऐ पृथ्वीतल के नवयुवको! खबरदार! तुम्हारा पहला कर्त्तव्य अपने स्वरूप को पहचानना है। शरीर और नाम के तौक (बंधन) को गर्दन से उतार डालो और संसार के बगीचे में हवास (विषयों) के दास बने हुए बोझ लादने के लिये बेगार में आवारा मत फिरो। अपने स्वरूप को पहचानकर सच्चे राज्य को सँभालकर पत्ते-पत्ते और कण-कण में फुलवारी का दृश्य देखते हुए निजी स्वतंत्रता में मस्त विचरण करो। वेदांत तुम्हारे काम-धंधे में गड़बड़ डालना नहीं चाहता, केवल तुम्हारी दृष्टि को बदलना चाहता है। संसार का दफ्तर तुम्हारे सामने खुला है। (God is no where) इसको ईश्वर कहीं नहीं है, संसार ही संसार है, पढ़ने के स्थान पर (God is now here) ईश्वर अब यहीं है, "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"—

"न मी गोयम कि अज़ आलम जुदा बाश;
बहर कारे-कि बाशी बा खुदा बाश।

अर्थ—मैं नहीं कहता हूँ कि तू संसार से अलग रह (वरन यह प्रेरणा करता हूँ) कि जिस काम में तू रह, ईश्वर के साथ रह, अर्थात् ईश्वर का ध्यान मन में रख।

[illegible] मा [illegible] का प्रयोजन तुम्हारी चोटी मुँड़ना नहीं है, तुम्हारा [illegible] स्वभाव है। हाँ, यदि तुम्हारे [illegible] जाय कि भीतर से फूटकर बाहर निकल [illegible] अर्थात् वैराग्य से कपड़े भी लाल गेरुए वस्त्र

न यह चाकर चाक कर्दीदा, न इस ज़र्रा शौक़ मिर्दीदा !
न मुरताक़ है दूध दहींदा, न इस भूख - पियास कुड़े !
कौन आया पहन लिबास कुड़े !

प्यारे भारतवासियो ! अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा "डी—ओ—जी=डॉग, डॉग माने कुत्ता" से आरंभ करने के स्थान पर "जी—ओ—डी=गॉड, गॉड अर्थात् परमेश्वर रूप ज्ञानियों के उपदेश "ॐ" से आरंभ कराओ।

बज़ रास्ती अस्त आब अलिफ़ दरमियाने-'जाँ'।
वाव बज़ कजी हमेशा बुवद दरमियाने-'ख़ूँ'॥

अर्थ—सचाई के कारण से शब्द 'जान' के बीच अलिफ़ का निवास है, और टेढ़ेपन के कारण अक्षर 'वाव' सदैव शब्द 'ख़ून' के मध्य में आता है।

किंतु ऐसा नहीं कर सके, तो लड़कों को कॉलेज में प्रविष्ट होने से पहले किसी पूर्ण ज्ञानवान् के सत्संग में पूरे साल अथवा कुछ मासों के लिये छोड़ दो। यदि यह भी न हो सके, तो ऐ युनिवर्सिटियों के डिगरी-पाए नवयुवको ! ऐ विलायत से पढ़कर आनेवालो ! रुपया की नौकरी ग्रहण करने से पहले आओ किसी ब्रह्मविद्या के सच्चे आचार्य की खोज करो, जो न केवल वेदांत के प्रकरण-ग्रन्थों (theology) से ही परिचित हो, वरन् जो स्वयं वेदांत(religion)स्वरूप हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया उपनिषद्रूप हो, जिसके रोम-रोम से यह गीत निकल रहा हो—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः आयेधामानि दिव्यानि तस्थुः॥१॥

वेदाहमेतम् पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमस परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ (यजु॰)

अर्थ—सुनो हे अमृतपुत्र, दिव्य स्थानों के वासियो ! सुनो मैंने पाया है मैंने पाया है। मैंने उस अनंत महान् पुरुष

को जाना है, जो अंधकार से सूर्य के समान पृथक् या नितान्त परे है, उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु पर अधिकार पाता है। यही विधि है मुक्ति पाने की, और कोई मार्ग नहीं, और कोई मार्ग नहीं।

क्या ऐसे ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानवान् महात्मा भारत में नहीं हैं? केवल उन्हीं के लिये नहीं हैं, जिन्हें सच्ची खोज नहीं। किसी ऐसे सत्य जीवन का सार ढूँढ़नेवाले परमहंस के सत्संग के प्रभाव से तुम समस्त आयु द्रव्य के दास नहीं बने रहोगे, वरन् "दौलत गुलामे-मन शुदोइक़बाल चाकरम् (संपत्ति मेरी दासी हो गई और प्रभुत्व मेरा दास)" का मामला देखोगे। जीवन के बाज़ार में जिस ओर जाओगे, आनंद का स्वर (harmony) तुम्हें स्वागत करता हुआ मिलेगा, जिधर दृष्टि को डालोगे, सफलता हाथ मिलाने को विद्यमान होगी। तुम्हारे अधरों (ओठों) पर नवीन उत्पन्न हुई तरोताज़गी के साथ माधुरी मुस्कान सदैव के लिये उत्पन्न होकर शोभा दिखाएगी, और मस्तक पर ज्ञान का सूर्य सदा के लिये उदय होकर शांति की वर्षा करेगा।

ब्रह्मविदिव सौम्य ते मुखं भाति। (छांदोग्य०)

अर्थ—हे सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानी के समान शोभायमान हो रहा है।

हाय मेरे प्राण से बढ़कर प्यारो! तुम्हें कब पता लगेगा कि

हर कस्ते कि ना निवाद-इश्क़ मस्त।
दर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

अर्थ—जो समझता कि [illegible] उसको वास्तव में मैं [illegible] निश्चय करता हूँ [illegible] शरीर का दिल

प्रकाशमान नहीं है, तो उसको मिट्टी-तले दबा दे, क्योंकि खाली फ़ानूस की कमरे में कोई महिमा नहीं होती।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने निस्संदेह कुछ लाभ पहुँचाया है, किंतु इसमें परिवर्तन और सुधार की बहुत आवश्यकता है। समस्त धर्मों का प्राण, तत्त्वज्ञान का मुकुट, विज्ञानों का विज्ञान वेदांत ही एक विद्या है, जो अज्ञान के भँवर में डूबनेवाले को बचा सकती है। बाल्यावस्था में जब कि हृदय का क्षेत्र प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करनेवाला होता है, प्रायः भ्रान्तियाँ (भूलें) जो विद्यार्थियों को पुष्टिकर औषधि समझकर पिलाई जाती हैं, उनके रक्त में दोष उत्पन्न कर देती हैं, और उनके जीवन को कड़ुवा बनाए रखती हैं। जैसे वर्तमान शिक्षा-विभाग की पुस्तकों के निम्न-लिखित पद्य कि—

सुबसे-नफ़्स न गर्दद बसालहा मालूम।
सगे रा लुक़्मए हरगिज़ फ़रामोश।
न गर्दद गर ज़नी सद नौबतिश संग॥
बगर उमरे नवाज़ी सिफ़लए-रा।
बकमतर चीज़े आयद बा तो दर जंग॥

अर्थ—अहंकार का नीचपन बरसों नहीं मालूम होता। कुत्ता ग्रास को कदापि नहीं भूलता है, चाहे सौ बेर उसको तू पत्थर मारे। और यदि समस्त आयु तू कमीने मनुष्य पर दया करे, तो वह थोड़ी सी बात पर तेरे साथ लड़ाई के लिये तत्पर हो जायगा।

बर सवाज़ादाय-दुश्मन तकिया कर्दन अब्लहीस्त।
पायबोसे-सैल अज़ पा अफ़गनद दीवार रा॥
न दानिस्त आँ कि रहमत कर्द बर मार।
कि आँ ज़ुल्मस्त बर फ़रज़न्द-आदम॥
मर्गीन [illegible] आँकि बज़ाहिर मुलायमस्त।
पिनदा [illegible] पन्थ निगर पन्था दाना रा।

प्रकाशमान नहीं है, तो उसको मिट्टी-तले दबा दे, क्योंकि खाली फ़ानूस की कमरे में कोई महिमा नहीं होती।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने निस्संदेह कुछ लाभ पहुँचाया है, किंतु इसमें परिवर्तन और सुधार की बहुत आवश्यकता है। समस्त धर्मों का प्राण, तत्त्वज्ञान का मुकुट, विज्ञानों का विज्ञान वेदांत ही एक विद्या है, जो अज्ञान के भँवर में डूबनेवाले को बचा सकती है। बाल्यावस्था में जब कि हृदय का क्षेत्र प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करनेवाला होता है, प्राय भ्रान्तियाँ (भूलें) जो विद्यार्थियों को पुष्टिकर औषधि समझकर पिलाई जाती हैं, उनके रक्त में दोष उत्पन्न कर देती हैं, और उनके जीवन को कड़ुवा बनाए रखती हैं। जैसे वर्तमान शिक्षा-विभाग की पुस्तकों के निम्न-लिखित पद्य कि—

> खुवसे-नफ़्स न गर्दद कमालहा मालूम।
> सगे रा लुक़्मए हरगिज़ फ़रामोश।
> न गर्दद गर ज़नी सद नौबतश संग॥
> वगर उमरे नवाज़ी सिफ़लए-रा।
> बकमतर चीज़े आयद बा तो दर जंग॥

अर्थ—अहंकार का नीचपन करमों नहीं मालूम होता। कुत्ता मास को कदापि नहीं भूलता है, चाहे सौ वेर उसको तू पत्थर मारे। और यदि समस्त आयु तू कमीने मनुष्य पर दया करे, तो वह थोड़ी सी बात पर तेरे साथ लड़ाई के लिये तत्पर हो जायगा।

> वर नवाज़ाहाय-दुश्मन तकिया कर्दन अब्लहीस्त।
> पाय्बोस ऐंश बजा रा अन्दरगनद हंशार रा।
> [illegible] नस्त [illegible] दुश्मन कर्द वर मार।
> [illegible] [illegible]-ज़ालिम॥
> [illegible] मु नासमस्त।
> [illegible] एला [illegible] रा।

अर्थ—शत्रु के मान-सत्कार पर भरोसा करना मूर्खता है; क्योंकि नदी का चरण-तल छूना दीवार को गिरा देता है। जिस व्यक्ति ने साँप पर कृपा की, उसने यह नहीं जाना कि मनुष्य-जाति पर (यह कृपा) अत्याचार है। जो कि देखने में सुकोमल स्वभाव है, वह भीतर से कठोर-हृदय है, रुई के भीतर बिनौले को छिपा हुआ देखो।

ऐसे उपदेशों से मनुष्य का हृदय संशय और दुर्भावों का घर बन जाता है, और उसकी आँखों में ऐसा रोग समा जाता है कि जिधर देखता है, मूर्तिमान् शत्रुता से सामना करना पड़ता है। यद्यपि वास्तव में इसके अपने दुर्भाव और खटके ही भेंट करने-वालों के अंध-हृदय हो जाने का कारण होते हैं, वेदांत का यह अनुशासन है कि 'नीच' शत्रु, पापाण-हृदय, पिशाच कोई है ही नहीं, मेरा पवित्र स्वरूप ही समस्त रूपों में प्रति समय शोभाय-मान है, अपने आपका कोई अनिष्ट नहीं करता, अतः मेरा अनिष्ट करनेवाला कौन है ? अन्य तो कभी विचार-गर्भ में भी उपस्थित नहीं हुआ। अविश्वास त्याग दो। भेद-दृष्टि वा द्वैत-दृष्टि का पाप तोड़ो, झूठ से मुँह मोड़ो।

यदि ऊपर से संखिया की भाँति कोई व्यक्ति मेरे निकट आया है, तो अवश्य किसी कुष्ठ को दूर करेगा। इस विष की आवश्यकता ही थी। यदि नश्तर के स्पष्ट ढंग में मिला है, तो अवश्य विक्षिप्तता (उन्माद) की नाड़ी को फ़स्द खोलकर मेरे स्वास्थ्य का कारण होगा, धन्य है। यदि काँटेवाला अस्तुरा बनकर आया है, तो अवश्य मेरा खत ही बनाएगा, अच्छा हुआ। सब शरीर मेरे हैं, मेरे अपने आपसे अवश्य मुझको हानि का भय नहीं। बाहरी विरोध वास्तविक नहीं, केवल देखने-मात्र है, जैसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कभी मुझमें बाल्यावस्था थी, फिर युवावस्था बीती, आगे बुढ़ापा आ जायगा, किंतु बाल्यावस्था, जवानी, बुढ़ापे